भगवान बुद्ध के अग्रउपासक

अनाथपिण्डिक

(दायकों में "अग्र")

विपश्यना विशोधन विन्यास

भगवान बुद्ध की उद्घोषणा

"एतदग्गं, भिक्खवे, मम सावकानं उपासकानं दायकानं
यदिदं सुदत्तो गहपति अनाथपिण्डिको।"

"भिक्षुओ मेरे उपासक श्रावकों में ये अग्र हैं - दायकों में
'अनाथपिण्डिक सुदत्त गृहपति'।"

–अङ्गुत्तरनिकाय १.१.२४९

भगवान बुद्ध के अग्रउपासक

अनाथपिण्डिक

विषयानुक्रमणिका

प्रकाशकीय

सावत्थी (श्रावस्ती) से अपनी ससुराल राजगह (राजगीर, राजगृह) आये हुए अनाथपिण्डिक ने जब सुना कि संसार में बुद्ध उत्पन्न हुए हैं और कल उसके साले के घर भोजन के लिए पधार रहे हैं तब वह भगवान के दर्शन के लिए अधीर हो उठा। सुबह पौ फटने के पहले ही चल पड़ा और नगर के बाहर जिस शीतवन में भगवान ठहरे हुए थे, वहां पहुँच गया।

भगवान ने उसे नाम लेकर बुलाया - 'आओ, सुदत्त!'

भगवान मेरा नाम लेकर मुझे बुला रहे हैं। इसी से हर्ष-विभोर हो उठा। भगवान ने अनाथपिण्डिक को धर्मकथा कही, जिसे सुनकर उसका मन शांत, प्रसन्न और निर्मल हुआ।

अपनी पूर्व पुण्यपारमी के कारण भगवान की वाणी सुनते-सुनते उसके भीतर अनित्यबोध जागा और वह पृथग्जन से स्रोतापन्न हुआ। भाव-विभोर होकर उसने भगवान को दूसरे दिन भोजन के लिए आमंत्रित किया। भगवान ने मौन रह कर स्वीकार किया।

दूसरे दिन भोजन ग्रहण कर भगवान ने धर्मोपदेश दिया, तब अनाथपिण्डिक ने भगवान से करबद्ध प्रार्थना की - 'भंते भगवान, भिक्षु-संघ के साथ अगला वर्षावास सावत्थी में स्वीकार करें।'

भगवान ने स्वीकारते हुए कहा - "हे गृहपति, तथागत शून्यागार, यानी एकांत में रहना पसंद करते हैं।"

अनाथपिण्डिक प्रफुल्लित हो कह उठा - "जान गया भगवान ! समझ गया सुगत!"

और सावत्थी पहुँच कर भगवान के विहार के लिए उपयुक्त स्थान की खोज करने में लग गया। स्थान ऐसा हो जो कि नगर से न अति दूर हो, न अति समीप। जहां लोगों के आ सकने की सुगमता हो। जहां न दिन में बहुत भीड़-भाड़ हो, न रात में बहुत हल्ला-गुल्ला। जो ध्यान के अनुकूल हो।

खोजते-खोजते उसे जेत राजकुमार का उद्यान अनुकूल लगा। इसे खरीदने के लिए वह जेत राजकुमार के पास गया। राजकुमार अपना उद्यान नहीं बेचना चाहता था। टालने के लिए उसकी कीमत कोटि-सन्थर बता दी।

अनाथपिण्डिक ने उसकी जुबान पकड़ ली और तत्क्षण सौदा पक्का कर लिया। कोटि-सन्थर का अर्थ था – करोड़ों का बिछावन। यानी सारी भूमि पर एक किनारे से दूसरे किनारे तक सोने के सिक्कों को बिछाना था। अनाथपिण्डिक ने यही किया। गाड़ियों में सोना भर-भर कर लाया और उसे उद्यान की सारी भूमि पर बिछाना शुरू कर दिया।

जहां भगवान लोगों को धर्म सिखायेंगे उस तपोभूमि की कोई कीमत नहीं आंकी जा सकती। वह अत्यंत प्रसन्न चित्त से जेतवन को सोने की मोहरों से ढंके जा रहा था।

राजकुमार यह सब देख कर भौचक्का रह गया। जमीन का एक कोना अभी बचा था जहां सोना बिछाया जाना था। अनाथपिण्डिक ने गाड़ियों से और सोना लाने का आदेश दिया परंतु जेत राजकुमार ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा – "बस कर, गृहपति ! इस खाली जमीन पर स्वर्ण मत बिछा। यह मुझे दे, यह मेरा दान हो।" अनाथपिण्डिक ने स्वीकार किया।

अनाथपिण्डिक ने उस बहुमूल्य धरती पर विहार, कोठे, सभागृह बनवाये; पानी गर्म करने के लिए अग्निशालाएं बनवायीं भंडारगृह, पेशाब-पाखाने के स्थान, खुले चंक्रमण, चंक्रमण शालाएं, पानीघर, प्याऊ, स्नानागार बनवाये; पुष्करणियां और मंडप बनवाये, जिससे कि हजारों भिक्षु और साधक भगवान के सान्निध्य में सुविधापूर्वक रहकर ध्यान कर सकें। भगवान के इस परम श्रद्धालु, गृहस्थ शिष्य ने दान के इतिहास में एक अतुलनीय समुज्ज्वल कीर्तिमान स्थापित किया। भगवान ने उसे दान के क्षेत्र में अग्र की उपाधि दी।

विपश्यना विशोधन विन्यास

कोशल का भाग्य जागा

जन्म तथा नामकरण

भगवान गोतम (गौतम) बुद्ध के समय में सावत्थी (श्रावस्ती) के सुमन श्रेष्ठी के यहां अनाथपिण्डिक का जन्म हुआ। मां-बाप ने उसे सुदत्त नाम दिया। जिसका दिया दान सुंदर है वह है सुदत्त। कालांतर में अनाथों और दीन-दु:खियों को भोजन-वस्त्र आदि दान देने के कारण वह अनाथपिण्डिक नाम से प्रसिद्ध हुआ।

बुद्ध-दर्शन

"श्रेष्ठी, क्या तुमने 'बुद्ध' कहा?"

"हां, अनाथपिण्डिकजी, मैंने बुद्ध ही कहा।"

"श्रेष्ठी, तो क्या संसार में बुद्ध उत्पन्न हुए हैं?"

"हां, अनाथपिण्डिकजी, संसार में बुद्ध उत्पन्न हुए हैं।"

"और श्रेष्ठी, तुम यह कहते हो कि कल प्रात:काल विशाल भिक्षु-संघ सहित बुद्ध तुम्हारे यहां भोजन पर पधारने वाले हैं?"

"हां, अनाथपिण्डिकजी, ऐसा ही है।"

उत्तर सुन-सुन कर अनाथपिण्डिक का तन और मन पुलक-रोमांच से तरंगित हुए जा रहा था। सावत्थी का धनकुबेर अनाथपिण्डिक आश्चर्यविभोर हो प्रश्न-पर-प्रश्न किये जा रहा था और राजगह (राजगीर, राजगृह) का धनपति, नगरश्रेष्ठी धनपाल अपने बहनोई के प्रश्नों का उत्तर दिये जा रहा था।

अनाथपिण्डिक ने अपने ब्राह्मण पुरोहितों से सुन रखा था कि संसार में बुद्ध का उत्पन्न होना अत्यंत दुर्लभ है। उनके धर्मशास्त्रों में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि किसी व्यक्ति के शरीर पर महापुरुष होने के बत्तीस लक्षण विद्यमान हों और वह गृहस्थ रहे तो महान शक्तिशाली, चक्रवर्ती सम्राट होता है परंतु यदि गृहत्यागी हो जाय तो परम ज्ञानसंपन्न, विवृत-कपाट सम्यक-संबुद्ध बनता है जो कि स्वयं भवमुक्त होकर अनेकों को मुक्ति का मार्ग दिखाता है। इसके लिए उसे अगणित जन्मों तक त्याग-तपस्या की पुण्य-पारमिताओं का असीम बल संचय करना पड़ता है जो कि आसान नहीं है। ऐसी घटना किसी-किसी कल्प में कभी-कभार घटती है। इसीलिए अनाथपिण्डिक को विश्वास नहीं हो रहा था कि सचमुच संसार में बुद्ध उत्पन्न हुए हैं।

परंतु विश्वास कैसे न करता? राजगह के नगरश्रेष्ठी के साथ उसका साले-बहनोई का ही नाता नहीं था, दोनों एक-दूसरे के परम मित्र भी थे। वह उससे कदापि झूठ नहीं बोल सकता था।

बातचीत के दौरान उसने यह भी जान लिया कि जो सम्यक-संबुद्ध हुए हैं, वे कोशलदेशीय शाक्यवंशी राजकुमार सिद्धार्थ हैं जिन्होंने चक्रवर्ती सम्राट हो सकने के प्रबल प्रलोभन को त्याग कर घर छोड़ा और बुद्धत्व प्राप्ति के लिए कठिन तपस्या की, पर इसे निरर्थक समझ मध्यम मार्ग अपनाकर बुद्धत्व प्राप्त किया है। उसने यह भी जाना कि अपने एक हजार शिष्यों सहित तीनों काश्यप बंधुओं ने इन्हें अपना आचार्य स्वीकार कर लिया है और इनके भिक्षु-संघ में सम्मिलित हो गये हैं। जो समस्त मगध, अंग और काशी में ही नहीं बल्कि अन्यत्र भी जन-पूज्य हैं, वे इनके शिष्य हो गये हैं; यह कोई साधारण बात नहीं है।

उसे यह भी जानने में देर नहीं लगी कि राजा बिंबिसार ने गृहत्यागी राजकुमार सिद्धार्थ को अपने विशाल राज्य में भागीदार बनाने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया था, परंतु असफल होने पर उनसे वचन लिया था कि बुद्धत्व प्राप्त हो जाय तो वे उसे और उसकी प्रजा को धर्म सिखाने के लिए राजगह अवश्य पधारेंगे। इसी वचनबद्धता के कारण भगवान बुद्ध राजगह आये हुए हैं और उनके उपदेश सुन कर स्वयं बिंबिसार ही नहीं बल्कि राजगह के श्रेष्ठी और निगमपति सहित अनेकानेक गण्यमान्य राज्य-कर्मचारी, अधिकारी, साहिब-मुसाहिब, ब्राह्मण-पुरोहित, सेठ-साहुकार भगवान के करबद्ध, श्रद्धालु अनुयायी हो गये हैं।

एक अत्यंत व्यवहार-कुशल, अंतर्राष्ट्रीय व्यवसायपति होने के कारण और स्वयं कोशल की राजधानी सावत्थी का नगरश्रेष्ठी होने के कारण अनाथपिण्डिक इस बात को खूब समझता था कि राजा का रुख देखकर उसे प्रसन्न रखने के लिए श्रेष्ठी तथा अन्य प्रजाजनों को वैसा ही रुख अपना लेना पड़ता है। राजा जिसे अपना धर्माचार्य मान लेता है, अन्य भी उसके भक्त होने का दिखावा करने लगते हैं। परंतु उसने देखा कि यहां ऐसी बात नहीं है। यहां कोई दिखावा नहीं है। राजगह का नगरश्रेष्ठी उसका अंतरंग मित्र है। दोनों में एक-दूसरे के प्रति अटूट स्नेह, विश्वास और आदर का भाव है। राजगह का नगरश्रेष्ठी अपने व्यापार-व्यवसाय हेतु अथवा अन्य किन्हीं पारिवारिक कारणों से जब सावत्थी जाता था तब अनाथपिण्डिक उसकी आवभगत में, स्वागत-सत्कार में कोई कसर नहीं रखता था। इसी प्रकार जब अनाथपिण्डिक राजगह आता था तब नगरश्रेष्ठी दूर से ही उसकी अगवानी के लिए स्वयं पहुँच जाया करता था। नौकर-चाकर तथा अन्य स्वजन-परिजन हाथ जोड़ उसकी सेवा में लग जाते थे। सबके लिए आकर्षण का केंद्र वही बन जाता था। परंतु इस बार ऐसा कुछ नहीं हुआ। उसके आगमन की सूचना पर नगरश्रेष्ठी न स्वयं दूर से उसका स्वागत करने आया और घर पहुँचने पर सामान्य कुशल-मंगल पूछने के अतिरिक्त न कोई अन्य बातचीत ही की; बल्कि वह अपने काम में व्यस्त हो गया, मानो उसके सिर पर कोई बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ पड़ी हो जिसे पूरा करने में वह तन-मन से लगा हुआ हो; मानो किसी बड़े आयोजन की तैयारी के लिए नौकर-चाकरों को उचित निर्देश दे रहा हो; उनके कार्यकलापों का स्वयं निरीक्षण कर रहा हो ताकि कहीं कोई त्रुटि न रह जाय; आयोजन की सफलता में कोई कमी न रह जाय। अनाथपिण्डिक इस बात को खूब जानता है कि नगरश्रेष्ठी के साथ उसके आत्मिक संबंधों में कोई कमी नहीं आयी है। अतः इस अप्रत्याशित उपेक्षा का अवश्य ही कोई अन्य बड़ा

कारण होगा। उस कारण को जानने के लिए अनाथपिण्डिक ने उत्सुकतावश उससे प्रश्न किया था।

– "बंधुवर, क्या तुम्हारे यहां कोई आवाह-विवाह का आयोजन है जिसमें इतने मशगूल हो, अथवा कोई वृहद यज्ञ होने वाला है, अथवा कल के लिए महाराज बिंबिसार को घर पर आमंत्रित कर रखा है, जिसकी तैयारी में इतने उलझे हुए हो?"

इसी प्रश्न के उत्तर में नगरश्रेष्ठी ने कहा था कि उसके यहां न किसी आवाह-विवाह का आयोजन है, न किसी वृहद यज्ञ का और न ही महाराज बिंबिसार उसके द्वारा आमंत्रित किये गये हैं; बल्कि सच्चाई यह है कि अपने सहस्राधिक भिक्षुओं सहित भगवान बुद्ध उसके यहां कल प्रातः भोजन के लिए आमंत्रित हैं। 'बुद्ध' शब्द सुनते ही वह आश्चर्यविभोर हो उठा था और एक बार नहीं; बल्कि तीन बार पूछ-पूछ कर इस सच्चाई को निश्चित कर लेना चाहता था।

नगरश्रेष्ठी से हुए वार्तालाप द्वारा अनाथपिण्डिक आश्वस्त हो गया कि बुद्ध सचमुच 'बुद्ध' हैं। उन्होंने झूठे प्रचार द्वारा अपने आपको बुद्ध घोषित नहीं किया है। उसका संबंधी नगरश्रेष्ठी धनपाल महाराज बिंबिसार को खुश रखने के लिए उनके आचार्य का श्रद्धालु शिष्य होने का ढोंग नहीं कर रहा है। यदि ऐसा होता तो वह अनाथपिण्डिक के आदर-सत्कार की उपेक्षा करके भगवान के लिए हो रही भोजन की तैयारी में इस कदर स्वयं कदापि व्यस्त नहीं हो जाता।

गौतम बुद्ध सचमुच बुद्ध ही हैं। जो बुद्ध हैं, उनका दर्शन कल्याणकारी होता है। अतः उसके मन में यह धर्म-संवेग जागा कि वह तत्काल भगवान बुद्ध का दर्शन करने जाय। जब उसने अपनी यह इच्छा नगरश्रेष्ठी के सामने प्रकट की तब उसने कहा कि यह समय अनुकूल नहीं है। भगवान अपने बृहद भिक्षु-संघ के साथ नगर के भीतर नहीं; बल्कि बाहर शीतवन में विहार कर रहे हैं और दिन ढल चुका है, नगर के दरवाजे बंद हो चुके हैं। रात बीतने पर नगर के दरवाजे खुलेंगे, तभी उनसे मिलना हो सकेगा अथवा कल जब वे भोजन पर यहां पधारेंगे तब उनसे मिलना हो सकेगा। मजबूरी थी,

अतः प्रातःकाल नगर-द्वार खुलते ही भगवान के दर्शनार्थ शीतवन चलना है, यह निर्णय करके अनाथपिण्डिक अपने बिस्तर पर लेट गया। परंतु उसकी आंखों में नींद कहां? भगवान बुद्ध के दर्शन की आकांक्षा-उत्कंठा उसके मानस में हिलोरें मार रही थी। नींद आती भी थी तो थोड़ी देर में उचट जाने पर उठ जाता था कि भोर हो गया है। परंतु रात का गहरा अँधेरा देखकर फिर सो जाता था। यों तीन बार उचक-उचक कर जाग उठा और अँधेरा देख कर सो गया। परंतु चौथी बार उठा तो अँधेरा होने पर भी घर के बाहर अकेला ही निकल पड़ा, जैसे कोई चुंबक-शक्ति उसे अपनी ओर खींच रही हो। भगवान के दर्शन का आकर्षण बड़ा प्रबल था।

सूर्योदय में अभी देर थी। नगर-वीथियों में नगरनिगम द्वारा कुछ-कुछ दूरी पर आलोकित दीप नीरव निशीथ के अंधकार से युद्ध कर रहे थे। नगर की इन दीपशिखाओं के धीमे प्रकाश के सहारे श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक नगर के दक्षिण द्वार की ओर बढ़ता जा रहा था। उसी दिशा में नगर के बाहर शीतवन था, जहां खुले में भगवान बुद्ध भिक्षु-संघ के साथ विहार कर रहे थे। सूर्योदय के पूर्व किसी भी दिशा का नगर-द्वार नहीं खुलता था, परंतु ऐसा संयोग हुआ कि अनाथपिण्डिक जैसे ही दक्षिण द्वार तक पहुँचा, उसे वह खुला हुआ मिला। वह नगर-द्वार के बाहर खुले मैदान में आ पहुँचा। यहां कोई नगर-वीथि नहीं थी, न नगर-वीथि का कोई दीप-स्तंभ था। चारों ओर निविड़ अंधकार था। नगर का यह दक्षिण द्वार नगर के मुर्दों के निगमन के लिए था। पास ही श्मशान भूमि थी। इस विजन वनप्रदेश में अनाथपिण्डिक को दिशाभ्रम हुआ। वह समझ नहीं पा रहा था कि किस ओर जाय? भगवान किस ओर विहार कर रहे हैं? चारों ओर श्मशान का सन्नाटा छाया हुआ था। अनाथपिण्डिक का दिल दहल गया। उसका हृदय कांप उठा। भय के मारे रोंगटे खड़े हो गये। पसीना छूटने लगा। उसे होश आया कि अभी रात समाप्त नहीं हुई है। सूर्योदय में देर है। नगर के बाहर निकलने का यह उचित समय नहीं था। वह उल्टे पांव घर लौटने को उद्यत हुआ। इतने में मानो अपने अंतर्मन में उसे एक आवाज़ सुनायी दी –

"चल, गृहपति चल। चलना ही तेरे लिए श्रेयस्कर है, मंगलकारी है। लौटना नहीं।"

यह आवाज़ सुनी तो अनाथपिण्डिक हिम्मत बटोर कर आगे की ओर बढ़ चला। थोड़ी ही देर में अंधकार का घनत्व दूर हुआ। कुछ दूरी पर, धुँधलके में उसे किसी एक व्यक्ति की अस्पष्ट-सी आकृति दिखायी दी। वे भगवान बुद्ध ही थे जो कि अपने नित्य-नियम के अनुसार प्रत्यूष के पूर्व खुली भूमि पर चंक्रमण कर रहे थे, टहलते हुए ध्यान कर रहे थे।

अनाथपिण्डिक जैसे ही कुछ समीप पहुँचा, भगवान चंक्रमण भूमि से नीचे उतर कर एक बिछे हुए आसन पर बैठ गये। उन्होंने अनाथपिण्डिक को आमंत्रित करते हुए पुकारा – 'आओ सुदत्त'!

भगवान की वाणी में निर्झरणी का-सा कलकल निनाद था। विद्युत का-सा चेतन प्रवाह था, अमृत की-सी मधुर मिठास थी, मलयानिल की-सी स्निग्ध शीतलता थी। सुनते ही अनाथपिण्डिक का सारा शरीर झनझना उठा। सचमुच भगवान 'भगवान' हैं, 'सम्यक-संबुद्ध' हैं, 'सर्वज्ञ' हैं; इसीलिए मुझे नाम लेकर बुला रहे हैं। सुदत्त उसके माता-पिता द्वारा जन्म के समय दिया हुआ नाम था। उसका यह नाम तो लोगों ने कब का भुला दिया था। अब तो वह अनाथपिण्डिक के नाम से ही प्रसिद्ध था। लोग उसे इसी नाम से जानते थे। परंतु भगवान उसके सही नाम से उसे पुकार रहे हैं। यह देख कर श्रेष्ठी भावविभोर हो उठा। उसका रोम-रोम रोमांचित हो उठा। हृदय प्रसन्न-पुलकित हो उठा। श्रद्धाबाहुल्य से उसकी आंखें डबडबा आयीं। भगवान के सम्मुख बैठ कर उसने उनकी चरण वंदना की। भगवान के दर्शनों से वह निहाल हो उठा। अनेक जन्मों का पूर्व-पुण्य प्रतिफलित हुआ। उसका भाग्य जागा। महामंगल का समय समीप आया।

धर्म-दर्शन

श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक मंत्रमुग्ध-सा भगवान की ओर अपलक देखता रहा और भगवान उस पर मंगलमैत्री की अविरल वर्षा करते रहे। उसका अनुत्तर धर्माभिषेक करते रहे। कुछ देर बाद श्रेष्ठी ने भगवान से यह औपचारिक प्रश्न पूछ लिया।

– भंते, भगवान रात सुख से सोये?

भगवान ने सुधा-वर्षिणी वाणी में उत्तर दिया –

– जो इसी जीवन में परिपूर्णरूप से नित्य, शाश्वत, ध्रुव, निर्वाणिक अवस्था का साक्षात्कार कर लेता है वह अरहंत हुआ व्यक्ति सही माने में ब्राह्मण बन जाता है। ऐसा पापमुक्त ब्राह्मण सदा सुख से ही सोता है। वह सभी दोषों से छुटकारा पाकर काम-संताप से मुक्त हुआ शीतलीभूत हो जाता है। सभी आसक्तियों को दूर कर सर्वथा निर्भय हो जाता है। चित्त-शांति उपलब्ध कर उपशांत हुआ वह व्यक्ति सदा सुख की नींद सोता है।

श्रेष्ठी यह सुन कर गद्गद हुआ। सचमुच कोई व्यक्ति चित्त-शांति से संपन्न होता है तो ही बुद्ध होता है। और बुद्ध होता है तो इन धार्मिक सद्गुणों को उपलब्ध कर सकने की ही सही शिक्षा देता है। वह सामने बैठे भगवान के चित्त की शीतलता का स्वयं अनुभव कर रहा है। वह खूब समझ रहा है कि यह एक धनवान व्यक्ति को ठगने के लिए किसी ढोंगी गुरु का प्रवंचन-प्रलाप नहीं है। भगवान के सान्निध्य में श्रेष्ठी धन्यता का स्वयं अनुभव कर रहा है।

भगवान ने देखा श्रेष्ठी का श्रद्धालु मानस सद्धर्म सुनने को आतुर है। अतः उन्होंने उसे धर्म का उपदेश दिया। क्रमशः उत्तरोत्तर शुद्ध धर्म प्रकाशित किया। धर्म सुनने वाला श्रावक गृहस्थ है, व्यवसायी है, धनपति है, धन संचय करने में संलग्न रहता है। गृहस्थ को धर्मपूर्वक, श्रमपूर्वक धन अर्जन करना ही चाहिए। इसमें कोई दोष नहीं है। किसी के सामने हाथ पसारना उसके लिए उचित नहीं है। परंतु जब धन के प्रति गहन आसक्ति हो जाती है तब यह अर्जन और संवर्धन केवल संचय, संग्रह, परिग्रह तक ही सीमित रह जाता है और गृहस्थ की आध्यात्मिक उन्नति में बाधक बन जाता है। अतः आनुपूर्विक धर्मकथा कहते हुए भगवान ने सर्वप्रथम दान की महत्ता समझायी। परंतु धनार्जन कर, अपनी आय का एक भाग जनहित के लिए दान देकर भी यदि दानी शील धर्म का पालन नहीं करे तो सुखी नहीं रह सकता। वह दुःखमुक्ति की बुनियादी अवस्था ही नहीं प्राप्त कर पाता। अतः भगवान ने शीलपालन की अनिवार्यता समझायी। शीलवान व्यक्ति इस जीवन में तो सुखी रहता ही है, मरणोपरांत भी सद्गति का अधिकारी

होता है। इसे स्पष्ट करते हुए स्वकर्मानुसार सद्गति-दुर्गति प्राप्त होने की धर्मनियामता समझायी। तत्पश्चात सदा काम-भोग में ही लिप्त रहने वाले गृहस्थ के क्लेश-कलुषय जीवन की हानियां और विशुद्ध निष्काम जीवन के लाभ समझाए।

परचित्तज्ञान की सिद्धि द्वारा भगवान ने अपने वोधिचित्त से देखा कि इस धर्मकथा को ध्यानपूर्वक सुनते-सुनते श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक का चित्त धर्म की गहराइयां समझ सकने लायक हो गया है। सामान्य धनवान गृहस्थ की अहंजन्य कठोरता पिघल गयी है और वह अत्यंत मृदुलचित्त हो गया है। उसके चित्त पर से कामछंद और व्यापाद, दूर हो गये हैं। शारीरिक और मानसिक आलस्य-प्रमाद, उद्विग्नता, वेचैनियां और क्षोभ तथा शंका-संदेह के सभी नीवरण-आवरण भी हट चुके हैं। उसका मन एकाग्र है, अचंचल है, श्रद्धासंपन्न है, उदग्र है, प्रसन्न है, निर्मल है, और गंभीर धर्म समझने के लिए सर्वथा सक्षम है।

यह देख कर भगवान ने उसे उन चार आर्यसत्यों की देशना दी जो किसी भी सम्यक-संवुद्ध द्वारा सम्यक-संवोधि प्राप्त करने के लिए अनिवार्य है। इन चार आर्यसत्यों का स्वयं साक्षात्कार करके कोई भी व्यक्ति अपने भवचक्र को दुर्वल वनाते-वनाते उसका नितांत भंजन कर लेता है और मुक्ति के स्रोत में पड़ कर आगे वढ़ता हुआ परम मुक्त अरहंत अवस्था प्राप्त कर लेता है।

भववंधन में पड़े दुखियारे प्राणी के लिए यही तो प्रासंगिक वात है कि वह इस सच्चाई को स्वानुभूति द्वारा जान ले कि यह भववंधन कितना दुःखदायी है और यह कि दुःख का मूल कारण दुर्द्धर्प तृष्णा है, आसक्ति है; जो कि हर मृत्यु के वाद नया-नया जन्म देकर इस दुःखद भवचक्र को चलायमान रखती है। इस दुःख से नितांत मुक्त हो जाने का उपाय शील, समाधि और प्रज्ञा के आठ अंग वाले मार्ग पर चलना; शील, समाधि और प्रज्ञा के अभ्यास से यह मुक्त अवस्था प्राप्त हो सकती है। सभी सम्यक-संवुद्धों द्वारा सत्य की यही खोज है जो उन्हें मुक्त हो सकने का मार्ग प्रशस्त करती है, जिससे कि वे स्वयं विमुक्त होकर औरों को विमुक्ति का

मार्ग दर्शाते हैं। शील का पालन करते हुए चित्त को एकाग्र कर अपने भीतर नाम और रूप के, यानी चित्त और शरीर के अनित्यधर्मा प्रपंच को विपस्सना (विपश्यना) विधि द्वारा अनासक्त भाव से देखना और देखते-देखते चित्त के विकारों को दूर कर लेना सिखाते हैं। पुनर्जन्म देने वाले पूर्वसंचित कर्म-संस्कारों का इस प्रकार क्षय करते-करते निरोध अवस्था का साक्षात्कार कर लिया जाता है। इंद्रियातीत परम सत्य का साक्षात्कार कर लिया जाता है।

यों भवचक्र से प्रपीड़ित किसी भी व्यक्ति को नितांत दुःखविमुक्ति की अवस्था प्राप्त हो सकती है। दुखियारे को और क्या चाहिए? दुःखविमुक्ति ही तो चाहिए। रोगी को रोगविमुक्ति, वंदी को वंधनविमुक्ति ही तो चाहिए। इसके लिए जो कार्य मुक्ति में सहायक है वही प्रासंगिक है। परंतु जव कोई व्यक्ति किसी संप्रदाय के वाड़े में वँधा होता है तव उसे उस संप्रदाय के कर्मकांडों के प्रति तथा उसकी दार्शनिक मान्यताओं के प्रति इतनी गहरी आसक्ति वनी रहती है कि वह दुःखविमुक्ति संवंधी इन प्रासंगिक सच्चाइयों को सुनना तक नहीं चाहता है और उन-उन अप्रासंगिक मान्यताओं को और क्रिया-कलापों को धर्म मान कर उन्हीं में उलझा रहता है। ऐसी मनोस्थिति वाला व्यक्ति शुद्ध विमुक्तिप्रदायक धर्म को सुनेगा ही नहीं तो समझेगा कैसे? समझेगा ही नहीं तो धारण कैसे करेगा? और धारण नहीं करेगा तो उससे लाभान्वित कैसे होगा? वास्तविकता से दूर काल्पनिक अंधमान्यताओं का स्वप्निल जीवन उसे वहुत प्रिय लगता है। ऐसा व्यक्ति यथाभूत धर्म की सच्चाई का उपदेश सुनने से कतराता रहता है। डरता रहता है कि मेरी दार्शनिक मान्यताओं का क्या होगा? मेरे कर्मकांडों का क्या होगा? मेरे संप्रदाय का क्या होगा?

परंतु सौभाग्य से अनाथपिण्डिक ऐसे शंकालु व्यक्तियों में से नहीं था। वह भारत और भारत के वाहर अपने विपुल व्यावसायिक प्रतिष्ठानों का कुशल संचालक था। अतः ठोस धरती पर पांव रख कर चलने की उसे आदत थी। निरर्थक भावुकता के स्थान पर यथार्थ का जीवन उसके लिए महत्त्वपूर्ण था। अतः उसने दत्तचित्त होकर तथता पर आधारित भगवान का उपदेश सुना। दुःख जीवन जगत की एक ठोस सच्चाई है। तृष्णा उसका

मौलिक कारण है, यह उसे समझते देर नहीं लगी। तृष्णा जागती है तो उसके अपूरित रहने पर चिड़चिड़ाहट होती है, द्वेष-दौर्मनस्य जागता है और उसके साथ-साथ अन्य अनेक विकारों का प्रजनन होने लगता है, उनका संवर्धन होने लगता है, और अंतर्मन की तलस्पर्शी गहराइयों में उनका संचयन होने लगता है जो कि विकार-प्रजनन के अंतर्स्वभाव को पुष्ट से पुष्टतर करते रहता है। परिणामतः दुःख पर दुःख बढ़ते ही जाते हैं। समस्त संसार की सारी संपदा एकत्र करके भी इन विकारजन्य दुःखों से छुटकारा नहीं पाया जा सकता। किन्हीं कर्मकांडों से, किन्हीं दार्शनिक मान्यताओं को कड़ाई से मान लेने से अथवा पुरोहितों द्वारा कोई धार्मिक अनुष्ठान करवा देने से इन विकारों की जड़ें नहीं निकलतीं। थोड़ी देर के लिए अपने आप को किसी भुलावे में भले भुलाए रखे। परंतु विकार-विमुक्त जीवन का यथार्थ सुख प्राप्त नहीं हो सकता। यह वह अपने अनेकानेक अनुभवों से जान चुका था। अतः उसे भगवान द्वारा दिया गया यथार्थ पर आधारित उपदेश बहुत उचित लगा, न्यायसंगत लगा, बुद्धिगम्य लगा। भगवान ने समझाया कि तृष्णा तथा उसके पीछे कतार बांधे समस्त विकारों का तन और मन से गहरा संबंध है और इन दोनों के संसर्ग से जो सुखद, दुःखद अथवा अदुःखद-असुखद संवेदनाओं की अनुभूति होती है, उनसे तो बहुत गहरा और सीधा संबंध है। जहां इन संवेदनाओं का विकारों के प्रजनन और संवर्धन से सीधा संबंध है वहां उनके संवर, उनकी निर्जरा और क्षय से भी इनका सीधा संबंध है। इन संवेदनाओं की अनुभूति होने पर अबोध अवस्था में जब-जब राग-द्वेषमयी तृष्णा की प्रतिक्रिया करते हैं तब-तब विकार उत्पन्न हो-होकर संवर्धन को प्राप्त होते हैं। यों नये-नये कर्मसंस्कारों का ढेर लगने लगता है। क्योंकि यह प्रतिक्रियात्मक चेतना ही तो कर्म है, कर्मसंस्कार है। इन्हीं संवेदनाओं को इनके अनित्य स्वभाव में साक्षीभाव से देखने से विकार-प्रजनन के स्वभाव का संवर होता है। इससे नये कर्मसंस्कार बनते नहीं और पुरानों की उदीरणा होती है, निर्जरा होती है और उनका क्षय हो जाता है। यों होते-होते जब अधोगति की ओर ले जाने वाले सारे कर्मसंस्कार नष्ट हो जाते हैं तब निरोध-निर्वाण की नित्य, शाश्वत, ध्रुव अवस्था का पहली बार साक्षात्कार होता है और साधक मुक्ति के स्रोत में पड़ जाता है।

अनाथपिण्डिक इस गंभीर उपदेश को बड़े ध्यान से सुन रहा था। वह अनेक जन्मों की प्रभूत पारमिताओं का धनी था। इन पारमिताओं का बल ही शुद्ध धर्म सुनने और समझने में उसका सहायक बन गया था। इस पुण्य-बल के कारण ही भगवान का उपदेश सुनते-सुनते उसे सारे शरीर में नन्हीं-नन्हीं ऊर्मियों के उदय-व्यय की अनुभूति होने लगी। अनित्यबोधिनी प्रज्ञा स्थिर होने लगी। मुक्तिदायिनी समता पुष्ट होने लगी। अनेकानेक पूर्वजन्मों में शुद्ध धर्म के संपर्क में आ-आकर अपनी पुण्यपारमिताएं पुष्ट करते हुए उसने अपने मन को पर्याप्त मात्रा में प्रांजल कर लिया था। अधोगति की ओर ले जाने वाले जो थोड़े-बहुत कर्मसंस्कार बचे थे, अब स्वतः जाग्रत हुई इस विपस्सना विद्या द्वारा उनकी भी उदीरणा हुई और उनका क्षय हुआ। अतः भगवान का उपदेश पूरा होते-होते उसी आसन पर बैठे-बैठे उसके भीतर विरज विमल धर्मचक्षु उत्पन्न हुए। अर्थात सभी काल्पनिक मान्यताओं के आवरणों को दूर कर सच्चाई को यथार्थ रूप से अनुभव कर सकने की विमल क्षमता प्राप्त हुई। जैसे किसी मैले कपड़े को बिल्कुल साफ करके रँगे तो उस पर बहुत चटकदार रंग चढ़ता है, ऐसे ही उसके स्वच्छ हुए मानस पर शुद्ध धर्म का कल्याणकारी रंग चढ़ा और उसे एकाएक निरोध अवस्था की अनुभूति हो गयी। शरीर और चित्त के समुदय और व्यय रूपी अनित्यधर्मा स्वभाव का अनुभव करते-करते तरंगातीत इंद्रियातीत अवस्था का अनुभव हो गया। वह इस सत्य को स्वानुभूति द्वारा जान गया कि जो कुछ समुदयधर्मा और व्ययधर्मा है, वह निरोधधर्मा भी है। समुदय और व्यय होना उसका स्वभाव है परंतु अब देखा कि इस समुदय-व्यय का जो अनित्यधर्मा क्षेत्र है, उसके परे निरोध, निर्वाण का नित्यधर्मा क्षेत्र भी है। अनाथपिण्डिक ने दोनों क्षेत्रों का अनुभव कर लिया। इन दोनों क्षेत्रों का स्वयं दर्शन कर, यानी उनका अनुभव कर, वह निहाल हो गया। सोतापन्न हो गया।

अनाथपिण्डिक को धर्म की सच्चाई अनुभूतियों के स्तर पर प्राप्त हुई। वेदनाओं के आधार पर विदित हुई। प्रगाढ़ रूप से उपलब्ध हुई। अब उसके लिए सद्धर्म के प्रति संदेह के लिए कोई स्थान नहीं रह गया। किसी दार्शनिक

मान्यता को लेकर वाद-विवाद करने का कोई कारण नहीं रह गया। भविष्य के प्रति कोई भय नहीं रह गया। किसी काल्पनिक अदृश्य सत्ता पर आश्रित-निश्रित रहने की आवश्यकता नहीं रह गयी। वह धर्म की यथार्थ धरती पर खड़ा होकर स्वयं स्वाधीन हुआ, स्वतंत्र हुआ। उसके लिए भगवान की शिक्षा का महत्त्व बहुत स्पष्ट हुआ। उसकी उपादेयता बहुत स्पष्ट हुई। अपने विकारशून्य चित्त में ऐसी प्रणीत शांति का अनुभव हुआ जो कि उसे न कभी किसी कर्मकांड पूरा करने से प्राप्त हुआ था और न किसी दार्शनिक मान्यता को अंधश्रद्धापूर्वक मान लेने से।

वह कृतज्ञता-विभोर होकर बोल उठा –

– कितनी श्रेयस है, भगवान, आपकी यह अद्भुत शिक्षा! जैसे कोई उल्टे को सीधा कर दे। ढके को उघाड़ दे। भूले-भटकों को सही रास्ता बता दे। अंधकार में तेल का दीपक जला कर रख दे जिससे कि आंख वाले यथार्थ को देख सकें। भगवान, आपने अनेक प्रकार से धर्म की सच्चाई प्रकट की है। मैं निहाल हुआ। भंते, मैं भगवान की, धर्म की और भिक्षु-संघ की शरण ग्रहण करता हूं। भंते, आज से मुझे प्राण-पर्यंत अपना श्रद्धालु उपासक स्वीकार करें।

तत्पश्चात उसने श्रद्धावहुल हो भगवान से प्रार्थना की कि वे भिक्षु-संघ सहित भोजन का निमंत्रण स्वीकार कर उसे कृतार्थ करें। आज का भोजन तो उसके साले के यहां ले रहे हैं अतः उसने कल के भोजन के लिए भगवान को संघ-सहित आमंत्रित किया जिसे भगवान ने मौन रह कर स्वीकार किया।

अनाथपिण्डिक जव लौटा तव उसका मन प्रसन्न था, प्रफुल्लता से उल्लसित था। आज उसने भगवान बुद्ध का दर्शन किया है। नाम और रूप के, यानि चित्त और शरीर के, अनित्य-स्वभावी धर्म का दर्शन किया है और उसके परे नित्य-स्वभावी निरोध-निर्वाण धर्म का भी दर्शन किया है। उसका मानव जीवन सफल हुआ है। धन्यता से भर उठा है। धर्म-मांगल्य से भर उठा है।

संघ-दर्शन

उसकी आंखों में उत्सुकता का आकाश समाया हुआ था। कोशल देश का धनकुबेर सुदत्त राजगह में अपने ससुराल के विशाल भवन की ड्योढ़ी पर एक खंभे के सहारे खड़ा था। उसकी पत्नी का भाई और उसकी बहन का पति नगरश्रेष्ठी बार-बार उससे अनुनय विनय कर रहा था कि आप बहुत थके हैं। कल सायंकाल ही इतनी लंबी यात्रा पूरी करके आये हैं और रात भर सुख से सो नहीं पाए। अतः भीतर शयनकक्ष में जाकर विश्राम करें। भिक्षु-संघ सहित जब भगवान पधारेंगे तब हम आपको सूचित कर देंगे। तब उनकी अगवानी के लिए चले आइयेगा। अभी भगवान के आने में कुछ देर है। तब तक विश्राम कर लेना ही उचित है। इससे यात्रा की थकान दूर हो जायगी।

सुदत्त ने मुस्करा कर सिर हिलाया और स्तंभ के सहारे वहीं खड़ा रहा। नगरश्रेष्ठी का संकेत पाकर द्वारपाल भीतर से एक चौकी ले आया। उस चौकी पर एक गद्दी रखी और उस पर शुभ्र श्वेत चादर बिछा दी। नगरश्रेष्ठी के आग्रह पर सुदत्त श्रेष्ठी उस पर बैठ गया लेकिन उसकी अपलक नजर राजपथ पर ही लगी रही। दक्षिणी द्वार से नगर में प्रवेश करके भगवान इसी पथ से आने वाले हैं। प्रतीक्षा में बैठे हुए सुदत्त के स्मृतिपटल पर तथागत की निन्नादी कल्याणी वाणी तरंगित हो रही थी। बार-बार उसका चित्त और शरीर पुलक-रोमांच से भर उठता था। मन हृदयवस्तु पर जा टिकता तो उत्पाद-व्यय की अत्यंत सूक्ष्म ऊर्मियों के निरीक्षण में तल्लीन हो जाता था। इस अवस्था में कुछ समय बीतने पर उसे याद आता कि आज प्रातःकाल भगवान की वाणी सुनते-सुनते इस सूक्ष्म अनित्यबोध की अनुभूति निरुद्ध हो गयी थी और भले क्षण भर के लिए ही उसे इंद्रियातीत, तरंगातीत, ध्रुव परम सत्य का साक्षात्कार हुआ था। उस अमृत के रसास्वादन करने पर उसे इस कदर हल्कापन महसूस हुआ था मानो अनेक जन्मों के कर्म-संस्कारों का बहुत बड़ा बोझ उतर गया हो। ये लोग मुझे विश्राम करने को कहते हैं ताकि मेरी थकान दूर हो जाय। ये नहीं जानते कि उस परम शांति की क्षणिक अनुभूति के द्वारा सावत्थी से राजगह की लंबी यात्रा की ही नहीं, बल्कि अनेक जन्मों की भवयात्रा की

थकान दूर हो गयी है। मैं कितना हल्कापन महसूस कर रहा हूं। अहो! मैं कितना भाग्यशाली हूं। उस क्षणिक अनुभूति की मधुर स्मृति मानस-सरोवर पर बार-बार कितनी सुखद ऊर्मियां जगाती है।

उसे खूब याद है। एक पहर पहले की ही घटना थी वह। प्रत्यूष के पूर्व का समय था, आकाश में पूर्ण प्रकाश का आगमन भी नहीं हुआ था। धुंधले प्रकाश में उसने तथागत के दिव्य, भव्य रूप का दर्शन किया था। अब दिवस के संपूर्ण प्रकाश में वह पुनः उनके दर्शन करेगा। उस समय कुछ दूरी पर उसने कुछ धुंधली-सी मानवी आकृतियां टहलती हुई देखी थीं। वह अवश्य ही भगवान का भिक्षु-संघ था। उस समय वह उन सभी का दर्शन नहीं कर सका था। अब भगवान के साथ उनका भी आगमन हो रहा है। उनका भी दर्शन होगा।

भगवान के भिक्षु-संघ के बारे में नगरश्रेष्ठी ने उसे जो कुछ बताया उसे स्मरण करते हुए उसका मन असीम श्रद्धा से भर उठा था। अहो भगवान का भिक्षु-संघ कितना स्तुत्य है, श्लाघ्य है, नमन्य है, प्रणम्य है, वरेण्य है! कितना वंदनीय है, अभिनंदनीय है! ऐसे आदर्श बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ का साक्षात दर्शन करने के लिए उसका मन उतावला हो रहा था। आंखों में असीम उत्सुकता समायी हुई थी।

उसे बहुत प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। शीघ्र ही दूर राजपथ पर भगवान बुद्ध आते हुए दीख पड़े। उनके पीछे-पीछे उन्हीं के जैसे गेरुए वस्त्र पहने हुए भिक्षुओं की लंबी कतार आती हुई दीख पड़ी। नगरश्रेष्ठी ने उसे बताया था कि भगवान के भिक्षु किसी दाता के घर के सामने 'भिक्षां देहि' की आवाज नहीं लगाते। मधुकरी के लिए निकले हुए भिक्षु किसी घर के सामने मौन रह कर कुछ क्षणों के लिए रुकते हैं। गृहपति या गृहणी बाहर आकर उनके भिक्षा-पात्र में भोजन डाल देते हैं। मन ही मन उसकी मंगल कामना कर वे आगे बढ़ जाते हैं। जब घर में से कोई दान देने वाला न निकलता तो उस घर के निवासियों की भी मंगल कामना करते हुए आगे बढ़ जाते हैं। पर ऐसा बहुत कम होता है। अक्सर गृहस्थ उनके आने की प्रतीक्षा करते रहते हैं ताकि ऐसे आदर्श संतों को भोजन-दान देकर वे असीम पुण्यलाभी हों। वे किसी भी घर के सामने भीख पाने की इच्छा से नहीं खड़े होते बल्कि गृहपति

और गृहस्वामिनी को दान के पुण्यलाभ का अवसर प्रदान करने के लिए रुकते हैं।

इस समय तो बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ नगरश्रेष्ठी के घर भोजन के लिए आमंत्रित है। अतः घर-घर गोचरी के लिए रुकने का प्रश्न ही नहीं है। सब के सब नपे-तुले कदमों से नगरश्रेष्ठी की हवेली की ओर बढ़ते चले आ रहे हैं। सभी नजर नीची किये हुए हैं। भगवान के भिक्षु भगवान की भांति सामने दो कदम या चार कदम की धरती तक अपनी दृष्टि सीमित रखते हुए चल रहे हैं। एक भी भिक्षु नजर उठा कर इधर-उधर नहीं देखता। वे परस्पर बातचीत भी नहीं करते। सभी मौन हैं, सभी निःशब्द हैं।

ये भिक्षु शालीनतापूर्वक शरीर को पूरी तरह ढक कर चले आ रहे हैं। इनके चीवर कीमती नहीं हैं, रूखे हैं, पर स्वच्छ हैं। जहां फटे हैं वहां सिले हुए हैं। सब के सब सौम्यता, शिष्टता और शालीनता की प्रतिमूर्तियां हैं।

बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ की यह कतार नगरश्रेष्ठी के घर के समीप आती जा रही है। सबके चेहरों पर नवोदित सूर्य के प्रकाश की किरणें पड़ रही हैं। भगवान का तो कहना ही क्या, सभी ध्यानलाभी भिक्षुओं के चेहरे अंतर्तप से दीप्त हैं। सभी ओजस्वी, सभी तेजस्वी, सभी शांत, सभी दांत, सभी संयत, सभी विनयनत।

अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी सुदत्त प्रसिद्ध दानी था। उसने भिन्न-भिन्न तीर्थों के, संप्रदायों के, संगठनों के, आश्रमों के गृहत्यागियों को अपनी दानशाला में आते हुए देखा है परंतु ऐसे पंक्तिबद्ध, अनुशासनबद्ध, संयमबद्ध, नियमबद्ध त्यागी, तपस्वी भिक्षुओं का संघ उसने अपने जीवन में पहली बार देखा। देखकर उसका हृदय गद्गद हो गया। वह अतुल अपरिमित श्रद्धाभिभूत होकर नतमस्तक हो गया। इस अनुपम संघ-दर्शन से उसका रोम-रोम पुलक-रोमांच से भर उठा। उसके हाथ स्वतः जुड़ गये। मुख से 'साधु! साधु! साधु!' की मंगल वाणी फूट पड़ी। उसकी आंखों से अनायास अविरल अश्रुधारा बह निकली। कंठ अवरुद्ध हो गया। कुछ देर तक भावविभोर होकर वहीं खड़ा रह गया।

उसकी सुध-बुध तब लौटी जब कतारबद्ध भिक्षु-संघ के आगे-आगे चलते हुए तथागत नगरश्रेष्ठी की ड्योढ़ी तक आ पहुँचे। नगरश्रेष्ठी और उसकी भार्या तथा अन्य सभी स्वजन-परिजनों ने बाहर आकर उनका स्वागत किया, उन्हें प्रणाम किया। श्रेष्ठी सुदत्त ने भी उनके प्रति स्वागत के शब्द कहे और उन्हें पंचांग प्रणाम किया।

भगवान अपने भिक्षु-संघ सहित ड्योढ़ी के भीतर हवेली के सामने विशाल प्रांगण में आ गये। दोनों श्रेष्ठियों की भगवान से कुशल-वार्ता हुई। उन्होंने तथा अन्य परिजनों ने बुद्ध सहित भिक्षुओं के पांव धोये और गीले पांवों को शुभ्र श्वेत पाद-वस्त्रों से पोंछा। भगवान भोजन के लिए बिछे हुए प्रमुख आसन पर बैठ गये। भिक्षु भी अपने-अपने आसन पर जा बैठे।

भोजन परोसे जाने का समय आया। परिवार के सभी लोग खिचड़ी, भात तथा नाना प्रकार के षड्रस व्यंजनों तथा विभिन्न मिष्टान्नों से भरे हुए पात्र लिए खड़े थे। नगरश्रेष्ठी अपने हाथों से भोजन परोस रहा था। उसके आग्रह पर सुदत्त श्रेष्ठी ने भी कुछ व्यंजन व मिष्टान्न परोसे।

भोजन आरंभ हुआ। सुदत्त श्रेष्ठी भगवान के सम्मुख एक नीचे आसन पर बैठ गया। उसने देखा सभी भिक्षुओं की नजर नीची है। केवल भोजन-पात्र तक सीमित है। भोजन करता हुआ कोई भी भिक्षु न किसी से बात करता है, न ही खाते हुए सुबुर-सुबुर जैसी आवाज करता है, न हाथ, न होठ, न पात्र चाट-चाट कर खाता है। पहला ग्रास निगल लेने के पहले दूसरा ग्रास मुँह में नहीं लेता। अत्यंत शालीनतापूर्वक भोजन ग्रहण करता है। भोजन कर लेने के बाद भगवान उठे, अपना भिक्षा-पात्र स्वयं धोया और पुनः अपने आसन पर आ बैठे। उनके बाद एक-एक करके सभी भिक्षु उठे, सब ने अपने-अपने पात्र धोये और अपने-अपने स्थान पर पुनः आ बैठे। भोजन का सारा कार्यक्रम जिस नीरव, सौम्य और शांतिपूर्वक ढंग से संपन्न हुआ उसे देख कर सुदत्त श्रेष्ठी विस्मय-विभोर हो उठा। साधकों का ऐसा अनुशासित संघ उसने पहली बार देखा, जिसे देख कर उसके हृदय में असीम श्रद्धा-भक्ति उमड़ पड़ी।

कुछ देर पश्चात भगवान ने भोजन-दान का पुण्यानुमोदन किया और गृहस्थ-धर्म समझाते हुए एक अत्यंत हृदय-स्पर्शी धर्मदेशना दी। सभी उपस्थित गृहस्थों ने उसे अतीव श्रद्धा-भक्तिपूर्वक श्रवण किया और भगवान तथा भिक्षु-संघ की वंदना की। इसके पश्चात भगवान उठे और जैसे आये थे, वैसे ही नपे-तुले कदमों से उन्होंने शीतवन की ओर प्रस्थान किया। भिक्षु-संघ ने उसी प्रकार अनुशासित ढंग से उनका अनुगमन किया।

सुदत्त श्रेष्ठी अपने विश्राम कक्ष में आकर कुछ देर आंख बंद किए बैठा रहा। अनुपम संघ-दर्शन से उसका रोम-रोम रोमांचित हो रहा था। हृदय पुलकित हो रहा था। धन्य है यह आदर्श भिक्षु-संघ, जिसे ऐसे अद्वितीय धर्म-शास्ता मिले हैं। यों चिंतन करते-करते वह स्वयं भी धन्यता के उदात्त भावों से भर उठा। अनायास उसके मुँह से साधुकार के मंगल शब्द फूट पड़े – साधु! साधु! साधु!

दान-चेतना

बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ के विदा होने पर अनाथपिण्डिक कुछ देर विश्राम करने के लिए अतिथिकक्ष के पलंग पर जा लेटा। रात भर का जागा हुआ था, तो भी उसकी आंखों में नींद नहीं थी। सारा शरीर, शरीर के अंग-प्रत्यंग अंग-प्रत्यंग के अणु-अणु किसी अपूर्व अदृश्य सुधाधारा से अभिषिक्त हो रहे थे। मानस एक अनिर्वचनीय धर्मरस के रसास्वादन में निरत था। नींद की कोई आवश्यकता नहीं थी। नींद से तन और मन को जो विश्रांति मिलती है वह इस प्रभूत प्रश्रब्धि और प्रशांति की तुलना में तुच्छ थी।

बंद आंखों के सामने बार-बार तथागत का शांत सौम्य मुखमंडल प्रकट होता। बार-बार गेरुए वस्त्रधारी पंक्तिबद्ध भिक्षुओं के दीप्त चेहरे प्रकट होते। बुद्ध और संघ की जो आकर्षक आकृतियां उसके चित्त-पटल पर गहरी अंकित हो गयी थीं, बंद आंखों के सामने बार-बार उन्हीं का बाह्य प्रक्षेपण हो रहा था। आज के पहले उसने न कभी ऐसा सुसंयत शास्ता देखा था और न ही ऐसा अनुशासित गृहत्यागी संत समूह। उन दिनों का महादानी धनकुबेर होने के कारण वह कई धर्मशास्ताओं के संपर्क में आया था और

उनके अनेक गृहत्यागी शिष्यों के भी। परंतु आज जिनके दर्शन हुए वे औरों के मुकाबले अतुलनीय थे, अनुपम थे, अनुत्तर थे। अनाथपिण्डिक देर तक आंख बंद किये उन्हीं भावों में खोया हुआ बैठा रहा, इतने में उसे दरवाजे के बाहर पदचाप सुनायी दिये। वह उठ बैठा। उसका बहनोई नगरश्रेष्ठी आया था और उसके साथ थी गृहस्वामिनी, जो कि अनाथपिण्डिक की बहन थी। भीतर आते ही श्रेष्ठी ने प्रश्न किया, "अनाथपिण्डिकजी! कुछ देर सो पाये?"

अनाथपिण्डिक ने कहा, "श्रेष्ठीजी! सारे जीवन सोया ही रहा। आंखें तो अब खुली हैं। जागृति तो अब आयी है। मैं आपका बड़ा आभारी हूं। आपके कारण ही आज मुझे इतना बड़ा लाभ मिला। मैं अनुपम त्रिरत्न के संपर्क में आया। अब मैं एक और अनमोल लाभ अर्जित किया चाहता हूं। आप तो जानते ही हैं, मैंने अनेकों को विपुल दान दिया है; देता ही रहता हूं। उस दान का कोई पुण्य नहीं होता, ऐसा तो नहीं कहता परंतु असीम फलदायी दान का बीज बोने के लिए मुझे ऐसे पुण्य-क्षेत्र पहले कभी नहीं मिले। अतः मैंने कल प्रातः के लिए भगवान बुद्ध और उनके संपूर्ण संघ को भोजन-दान के लिए आमंत्रित किया है। भगवान ने मुझ पर कृपा कर इसे स्वीकार कर लिया है। परंतु मैं देखता हूं कि आपके नौकर-चाकर आज प्रातःकाल के संघदान की तैयारी में किस प्रकार जुटे रहे। वे बहुत थक गए होंगे। अब पुनः उनके लिए इतना ही काम सामने है। सचमुच उन्हें बहुत कष्ट होगा, इसी का मुझे संकोच है।"

श्रेष्ठी ने कहा, "जब-कभी घर पर भिक्षु-संघ के साथ भगवान बुद्ध के लिए भोजन-दान का पुण्य अवसर प्राप्त होता है, तब मेरे नौकर-चाकरों के, सेवक-सेविकाओं के, दास-दासियों के मनमानस में खुशियां भर जाती हैं। वे भी अपने आपको बहुत भाग्यशाली समझते हैं और असीम उत्साह से काम में जुट जाते हैं। आप उनके लिए लेशमात्र भी चिंता न करें। और हां, मेरा एक निवेदन है कि कल के संघदान का पुण्य तो आपका ही हो, परंतु इस पुण्यकार्य में जो धन व्यय होगा, वह हमारी ओर से लगेगा। आप तो हमारे अतिथि हैं। कृपया मेरे इस निवेदन को अस्वीकार न कीजिए।"

परंतु अनाथपिण्डिक ने श्रेष्ठी के इस सुझाव को स्वीकार नहीं किया। सारे घर में महासंघ दान की तैयारियां पुनः आरंभ हो गयीं। नौकर-चाकरों, सेवक-सेविकाओं और दास-दासियों के मानस में सचमुच उमंग और उल्लास की लहरें उर्मिल हो उठीं। सभी प्रसन्नचित्त से मुस्कराते हुए काम में लग गये। अनाथपिण्डिक की बहन भी खुशियों से थिरक उठी। भैया ने कितना अच्छा निर्णय किया। कल हमारा घर भगवान के पवित्र चरणों से पुनः पावन हो उठेगा।

अनाथपिण्डिक के संघदान की चर्चा नगर के नैगम तक पहुँची। वह अनाथपिण्डिक का पूर्व-परिचित था। उनसे मिलने आया। उसने भी यही निवेदन किया कि भोजन-दान का पुण्य तो आपका ही हो परंतु उसके लिए जो खर्च लगे, वह मेरी ओर से हो। आप तो हमारे नगर के सम्माननीय अतिथि हैं।

अनाथपिण्डिक ने उसके मैत्रीपूर्ण प्रस्ताव को भी नम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया।

चर्चा महाराज बिंबिसार के महलों तक पहुँची। उसने भी अपने एक राज्य कर्मचारी के जरिये यही निवेदन भेजा। अनाथपिण्डिक ने अत्यंत नम्रतापूर्वक उसे भी अस्वीकार कर दिया। महाराज ने कहलवाया – इस महासंघदान में प्रचुर धन लगेगा। अनाथपिण्डिक ने अपने साथ इतना धन नहीं लाया होगा। परंतु अनाथपिण्डिक ने उत्तर भिजवाया कि उसने आवश्यकता से अधिक धन अपने साथ लाया है। महाराज निश्चिंत रहें।

अनाथपिण्डिक जब कभी व्यापारिक यात्रा पर निकलता तब पर्याप्त मात्रा में स्वर्णमुद्राएं अपने साथ लेकर चलता। यात्रा में जिस किसी ग्राम में, नगर में, निगम में या राजधानी में जिस किसी व्यक्ति को अथवा जनसमूह को जितना दान देने की चेतना जागती उसे उतना ही दान देता। बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ के भोजन-दान के व्यय के लिए उसके पास स्वर्णमुद्रा पर्याप्त थी।

अपने दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर रात्रि के पहले याम में अनाथपिण्डिक की बहन और नगरश्रेष्ठी की बहन और नगरश्रेष्ठी बहनोई

अतिथिकक्ष में उसके पास पुनः आ बैठे और देर तक तथागत तथा उनके संतसंघ के बारे में चर्चा चलती रही।

उन्होंने बताया कि आज प्रातःकाल तथागत के साथ जब भिक्षु-संघ आया था और जो कल प्रातः पुनः आने वाला है, उसमें मगध के प्रसिद्ध अग्निहोत्री उरुवेल काश्यप, नदी काश्यप और गया काश्यप तथा उनके एक हजार जटिल शिष्य भी सम्मिलित हैं। ये सब भगवान के संपर्क में आकर उनकी शिक्षा से इतने प्रभावित और लाभान्वित हुए कि दाढ़ी-मूंछ और जटा मुँडवा कर उनके शिष्य वन गये। यह सुन कर अनाथपिण्डिक वहुत रोमांचित हुआ। वह जानता था कि काश्यप-वंधु मगध में ही नहीं वल्कि मगध के वाहर कोशल देश के अनेक निवासियों के लिए भी पूज्य हैं। अग्निहोत्री कर्मकांड के मुकावले उन्होंने तथागत की ध्यान-साधनाप्रधान जीवनचर्या सचमुच अधिक सफल सार्थक देखी होगी।

उसे यह भी बताया गया कि मगध के प्रसिद्ध गणाचार्य संजय के दोनों प्रमुख शिष्य सारिपुत्त और मोग्गल्लान सहित उसके अन्य २५० अंतेवासी भी उसे छोड़ कर भगवान की शरण चले आये। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक गृहत्यागी संन्यासी तथागत के संघ में सम्मिलित हो गये। राजगह के अनेक गृहपति भी गृहस्थ जीवन त्याग कर उनके पास प्रव्रजित हो भिक्षु-संघ में सम्मिलित हो गये । इस प्रकार दिन पर दिन भिक्षु की संख्या वढ़ती गयी और इसके साथ-साथ उनका मान-सम्मान भी। इसके कारण अन्य अनेक प्रव्रजितों के मन में डाह उत्पन्न हुई। उन्होंने नगरनिवासियों को भगवान का विरोधी वनाने के लिए उनके विरुद्ध दूषित प्रचार करना आरंभ किया। उनकी वातें सुन-सुन कर अनेक लोग यह कहने लगे –

यह श्रमण गोतम माता-पिता को निपूता बनाने के लिए, कुलवधुओं को विधवा वनाने के लिए, गृहस्थों का वंश नष्ट करने के लिए आया है। इसने काश्यप मंडली के एक हजार जटिलों को भिक्षु बना लिया। संजय के २५० शिष्यों को भिक्षु-संघ में सम्मिलित कर लिया। इतने से इसकी तृष्णा पूरी

नहीं हुई। अब मगध के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कुलपुत्र भी इसके पास भिक्षु बनते जा रहे हैं। और न जाने किन-किन को अपने बाड़े में बांधेगा।

परंतु यह निंदा थोड़े ही दिनों चली। शीघ्र ही लोगों की समझ में आने लगा कि शाक्यपुत्र श्रमण गोतम चेले मूंड़कर कोई संप्रदाय नहीं खड़ा कर रहा है। यह शुद्ध धर्म सिखा रहा है। जिन्हें भी सत्य धर्म का शुद्ध स्वरूप समझ में आ जाता है वे स्वभावतः इसके अनुयायी वन जाते हैं। जन्म-मरण के भवचक्र से शीघ्र मुक्त होने के लिए जिनके मन में तीव्र धर्मसंवेग जागता है वे घर से वेघर हो इसके पास जाकर प्रव्रजित होते हैं। धर्म तो यह सब को सिखाता है। सभी भिक्षु नहीं वन जाते। अनेक लोग ऐसे हैं जो अभी गृह नहीं त्याग सकते। वे गृही रहते हुए भी उसी धर्मशिक्षा का पालन करते हैं। भले उनकी प्रगति धीमी हो, पर धर्म धारण करने का लाभ उन्हें भी मिलता ही है। बुद्ध के वताये मार्ग पर चल कर कितने गृहस्थों ने अपने जीवन सुधार लिये हैं। जव यह सच्चाई समझ में आने लगी तव भगवान द्वारा दिये गये शुद्ध धर्म के प्रशिक्षण के प्रति कोई भी समझदार व्यक्ति कैसे विरोध करता? वल्कि और अधिक संख्या में लोग उनके बताये मार्ग पर श्रद्धापूर्वक चलने लगे।

यों शाक्यमुनि के प्रति जागी हुई निंदा शीघ्र ही प्रशंसा में बदलने लगी। लोगों ने देखा कि वे अपने अनुयायियों को धर्म में दीक्षित कर रहे हैं, किसी संप्रदाय में नहीं। वे लोगों को सत्य का दर्शन कराते हैं। मिथ्या अंधविश्वासों में नहीं उलझाते। उनकी शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य यही है कि लोग शीलवान बनें, समाधिवान बनें, प्रज्ञावान बनें और अपना मंगल साध लें। जो उनके बताये मार्ग पर चलने लगे उन्होंने देखा कि इस शिक्षा से लोभ, द्वेष और मोह नष्ट होते हैं। जितने-जितने नष्ट होते हैं, व्यक्ति उतना-उतना निर्मलचित्त होता है, दुःखविमुक्त होता है। उसका मानस मैत्री, करुणा और सद्भावना से भर उठता है। गृहस्थ हों या भिक्षु, बुद्ध की यह शिक्षा सब के लिए उपयोगी सिद्ध हुई है।

चर्चा चलती रही। नगरश्रेष्ठी ने अनाथपिण्डिक से कहा कि हम गृहस्थ विशेषत: व्यवसायी वर्ग के लोग कितने राग-रंजित रहते हैं, पारस्परिक ईर्ष्या और मात्सर्य जगा कर कितने द्वेष-दूषित रहते हैं, परिणामत: कितने दु:खी रहते हैं। मोह-मूढ़ता के कारण यह समझ भी नहीं पाते कि अपने भीतर राग और द्वेष के प्रजनन तथा संवर्धन द्वारा हम स्वयं अपने आप को दु:खी बनाते हैं। इसके लिए हम स्वयं जिम्मेदार हैं। बुद्धि के स्तर पर यह समझ लें तो भी उस दु:खदायी स्वभाव-शिकंजे से कैसे मुक्त हों, यह नहीं जानते। तथागत केवल उपदेश देकर नहीं रह जाते बल्कि इस दु:ख से विमुक्त होने के लिए ऐसी सहज सरल विधा सिखाते हैं जिसका अभ्यास करके लोग इसी जीवन में लाभान्वित होने लगते हैं।

श्रेष्ठी ने एक और महत्त्वपूर्ण बात यह बतायी कि तथागत और उनके भिक्षु ऐसी अनमोल विद्या सिखा कर भी बदले में कुछ नहीं मांगते। सर्वथा अकिंचन रहते हैं। आश्चर्यजनक है इनका त्याग, अद्भुत है इनका अपरिग्रह।

श्रेष्ठी ने अनाथपिण्डिक को बताया कि महाराज बिंबिसार ने नगर के बीचोबीच तथागत और उनके भिक्षु-संघ को वेणुवन विहार दान में दिया। यह उपवन बहुत विस्तृत है। फिर भी इतने बड़े भिक्षु-संघ के लिए बहुत छोटा है। अत: इसमें भगवान कुछ एक भिक्षुओं के साथ कभी-कभी ही विहार करते हैं और उस समय उनके पास जो गृहस्थ आते हैं उन्हें शुद्ध धर्म धारण करने की विद्या सिखाते हैं। परंतु अधिकांशत: वे अपने समग्र भिक्षु-संघ के साथ नगर के बाहर रहते हैं। वे कभी किसी सुनसान श्मशान-भूमि के समीप रहते हैं जहां कि आज प्रत्यूषकाल में आप उनसे मिलने गये। कभी किसी पर्वत की गुहा-कंदराओं में अथवा वन-प्रदेशों में पेड़ों के नीचे रहते हैं। नगर में भिक्षाटन करके ऐसे निर्जन स्थानों में निवास करने चले जाते हैं जहां विभिन्न प्रकार की असुविधाएं हैं। वर्षा, शीत और धूप से बचने के लिए सिर पर कोई छत नहीं। हिंस्र पशुओं से, सरीसृपों से, मक्खी-मच्छरों से, कीट-पतंगों से बचने के लिए कोई कुटिया भी नहीं। परंतु इसके लिए वे किसी से कभी कुछ नहीं मांगते। ऐसे असुविधाजनक निर्जन

स्थानों में निवास करते हुए भी वे और उनके भिक्षु अत्यंत संतुष्ट-प्रसन्न रहते हैं। लेकिन ऐसे निर्जन स्थानों में उनके पास जाकर बहुत कम नागरिक धर्म की शिक्षा ग्रहण कर पाते हैं। अत: एक बार मैंने विनम्र भाव से उनके कुछ भिक्षुओं से निवेदन किया कि यदि वे स्वीकृति दें तो मैं नगर की चारदीवारी के भीतर ही उनके निवास के लिए कुछ एक विहार बना कर दान दूं जिससे कि वे स्वयं भी बिना किसी बाधा के सुविधापूर्वक ध्यान कर सकें और नगर के अनेक नागरिक भी उनके पास सुगमतापूर्वक पहुंच कर शुद्ध धर्म सीख सकें।

भिक्षुओं ने मेरे इस प्रस्ताव को स्वयं स्वीकार नहीं किया। उन्होंने इसे भगवान के सम्मुख रखा। मेरे सौभाग्य से भगवान ने स्वीकृति दे दी। मैंने नगर में भिन्न-भिन्न स्थानों पर इन संत भिक्षुओं के लिए ६० विहार बनवा दिये। ये विहार न तो भिक्षुओं के आराम करने के लिए हैं; न उनके आमोद-प्रमोद के लिए हैं और न ही आलस्य-प्रमाद में जीवन बिताने के लिए। ये विहार वस्तुत: आदर्श तपोभूमियां हैं जहां साधक भिक्षु स्वयं भी सुविधापूर्वक ध्यान करते हैं और सुबह-शाम उनके पास आने वाले अनेक गृहस्थ भी उनसे धर्म धारण करने का प्रयोगात्मक प्रशिक्षण लेकर लाभान्वित होते हैं।

ऐसे विहारों का, ऐसी तपोभूमियों का, ऐसे ध्यानकेंद्रों का दान सचमुच असीम फलदायी होता है। श्रेष्ठी ने अनाथपिण्डिक को बताया कि इन विहारों का निर्माण करके जब उसने पुण्यानुमोदन करते हुए जो धर्मदेशना दी थी वह उसे सदा रोमांचित करती रहती है। भगवान ने कहा था – "उपासक, बाह्य बाधाओं से सुरक्षित रख कर सुख-सुविधापूर्वक ध्यान कर सकने के लिए जिस विहार का दान दिया जाता है वह सभी दानों में श्रेष्ठ दान है, अग्र दान है। इस दान की सुविधा पाकर विपस्सना ध्यान करते हुए केवल भिक्षु ही अपना भवचक्र भंजन नहीं कर लेते, प्रत्युत दायक गृहस्थों को भी धर्म साधना सिखाते हैं, जिसका अभ्यास करते हुए वे भी शुद्ध सत्य का दर्शन-ज्ञान प्राप्त करते हैं और शनै:-शनै: आस्रवों से विमुक्त होते हैं, भवचक्र का भेदन कर परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं।"

अतः शुद्ध धर्म का विहार एक आदर्श ध्यान-केंद्र होने के कारण भिक्षुओं के लिए तो अमित उपयोगी है ही, श्रद्धालु गृहस्थों के लिए भी कम लाभदायी नहीं। इसीलिए ध्यान साधना हेतु बने विहार के दान को भगवान ने सर्वोत्तम दान कहा, अग्र दान कहा। सद्गृहस्थ भिक्षुओं को विहार का अग्र दान देते हैं। बदले में भिक्षुओं से वे धर्म का अग्र दान प्राप्त करते हैं और लाभान्वित होते हैं।

श्रेष्ठी से यह विवेचन-विवरण सुनते-सुनते अनाथपिण्डिक की आंखें गीली हो गयीं। गद्गद कंठ से उसने कहा – साधु! साधु! साधु! श्रेष्ठी, सचमुच तुम्हारा यह विहारों का दान अग्र ही है। सचमुच तुम धन्य हुए।

बहन-बहनोई के चले जाने के बाद अनाथपिण्डिक बिस्तर पर लेटे-लेटे इसी चिंतन-मनन में निमग्न रहा। मैं देश-विदेशों में स्थान-स्थान पर नित्य सैकड़ों भूखों को भोजन-दान देता हूं। यह अच्छा है, इसका अपना पुण्य है। एक भूखा व्यक्ति भोजन पाकर एक दिन की भूख की पीड़ा से तो मुक्त होता है, परंतु दूसरे दिन फिर भूखा हो जाता है। उसकी यह भूख की पीड़ा सदा के लिए मिटती नहीं। परंतु अनंतकाल से भव-भ्रमण करने वाले दुखियारे मानव को विपस्सना विद्या मिल जाय तो उसका अभ्यास करते-करते पुनर्जन्म देने वाले जितने-जितने कर्मसंस्कारों से विमुक्त होता है, उतने-उतने दुःखों से सदा के लिए मुक्त हो जाता है। सारे भवसंस्कार नष्ट कर ले तो सदा के लिए पूर्णतया भवमुक्त, दुःखमुक्त हो जाय। आज प्रातःकाल थोड़े से क्षणों के लिए ही मुझे जिस आंतरिक सुख-शांति की अनुभूति हुई उसका प्रभाव मेरे मानस पर अब तक कायम है और सारे जीवनभर उसकी सुखद स्मृति भुलाई नहीं जा सकेगी। जिस व्यक्ति ने भव-संसरण से पूर्णतया मुक्ति पा ली उसकी सुख-शांति का तो कहना ही क्या? ऐसी परम सुख-शांति अनेकों को मिले। सचमुच धर्म का दान सर्वश्रेष्ठ दान है। धर्मदान के केंद्र-स्वरूप इन विहारों का दान भी सर्वश्रेष्ठ दान है। यही अग्र दान है। इसी में अपरिमित मंगल कल्याण समाया हुआ है।

अनर्घ-दान

वृहत भिक्षु-संघ सहित भगवान बुद्ध प्रातःकालीन भोजन-दान ग्रहण करने के लिए नगरश्रेष्ठी के घर पधारने वाले हैं।

अपने बहनोई राजगह श्रेष्ठी के अतिथि-कक्ष में लेटा हुआ अनाथपिण्डिक इस भावी महापुण्य की कल्पना से पुलकित-रोमांचित हो रहा था। अपने बहनोई द्वारा बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ के लिए साठ विहारों की दान-कथा उसे भाव-विभोर कर रही थी। क्या मैं भी सावत्थी में ऐसी तपोभूमि का दान दे सकने का सौभाग्य प्राप्त कर सकूंगा। क्या भगवान इसे स्वीकार करेंगे! सावत्थी महाकोशल राज्य की राजधानी है। जंबूद्वीप (भारत) के मध्यमंडल प्रदेश की सबसे विशाल और जनाकीर्ण नगरी है। यदि वहां कोई तपोभूमि बने और भगवान पधारें तो हजारों भिक्षु तो उस विहार में तपेंगे ही, साथ-साथ उस महानगरी के लाखों दुखियारे गृहस्थों को भी ऐसी कल्याणी विपस्सना विद्या प्राप्त हो सकेगी जिससे उनका भी लोक सुधरेगा, परलोक सुधरेगा और वे भी भवसंसरण से सहज मुक्त हो सकने का मार्ग पा सकेंगे। सभी तो दुखियारे हैं। निर्धन तो निर्धन, जो मेरे जैसे धनी हैं वे भी कितने दुखियारे हैं। सदा आत्मभाव में डूबे रहते हैं, आसक्त रहते हैं और इस कारण मन में राग या द्वेष जगाते रहते हैं। परिणामतः व्याकुल होते रहते हैं।

इस प्रकार अनाथपिण्डिक का मनोमंथन चलता रहा। उसे याद आया। कल प्रत्यूष काल के पूर्व वह पहली बार भगवान तथागत से मिला था। उनके मुख से शील, समाधि और प्रज्ञा के शुद्ध धर्म की व्याख्या सुनी थी जिसे सुनते-सुनते उसने अपने भीतर उस शिक्षा के प्रयोगात्मक पक्ष का अभ्यास किया था। इससे जो लाभ हुआ, उसे याद करके वह बार-बार रोमांचित हो रहा था। अभ्यास करके यहीं इसी जीवन में शनैः शनैः विकार-विमुक्त होने की यह तत्काल फलदायिनी विद्या लोगों को प्राप्त होगी तो वे अनेक जंजालों में से निकल कर धर्म के शुद्ध मार्ग पर चलने का अभ्यास करने लगेंगे। भगवान यदि मुझे सावत्थी में एक विहार बनाने की अनुमति दे दें तो उस

विहार में चित्त एकाग्रता और चित्त विशुद्धि के लिए केवल भिक्षुओं को ही उचित सुख-सुविधा नहीं मिलेगी, वल्कि अनेक मुमुक्षु गृहस्थों को भी इसका बहुत बड़ा लाभ होगा। अपनी वहन और वहनोई के मुख से उसने कल ही सुना कि यहां राजगह में उनके द्वारा दान दिये गये विहारों में अनेक गृहस्थ भी इस विकार-विशोधनी साधना से लाभान्वित हो रहे हैं। इसी प्रकार सावत्थी का विहार भी गृहस्थों के कल्याण का कारण बनेगा। इस चिंतन में निमग्न अनाथपिण्डिक बार-बार धर्म-विह्वल होता रहा। उसका मन-मानस प्रीति-प्रमोद से उर्मिल-उर्मिल होता रहा। प्रत्यूष के बहुत पूर्व ही वह उठ बैठा। सारी रात नहीं सो पाने पर भी उसके तन और मन में कहीं कोई थकावट नहीं थी, आलस्य नहीं था, तनाव नहीं था। उसका हृदय गद्गद हो रहा था। शरीर बहुत हल्का था।

उसने देखा कि उसके वहनोई के परिवार के लोगों ने मिल कर भगवान और भिक्षु-संघ के लिए अनेक सुस्वादु व्यंजनों सहित भोजन तैयार कर लिया है। पौ फटते ही उसने भगवान को सूचना भिजवायी – भोजन का समय हो गया है। कृपया भिक्षु-संघ सहित पधारें। सूर्योदय होते-होते भगवान चीवर पहन भिक्षापात्र हाथ में लिए हुए कतारबद्ध भिक्षु-संघ सहित श्रेष्ठी के घर पहुँचे। अनाथपिण्डिक ने श्रद्धापूर्वक नमन करते हुए उनका स्वागत किया। उनके पांव धोकर बिछे हुए आसनों पर बैठाया और अपने हाथ से उत्तम-उत्तम स्वादिष्ट भोजन परोसा। भगवान द्वारा भोजन-पात्र से हाथ खींच लेने पर अनाथपिण्डिक उनके सामने हाथ जोड़कर बैठ गया। उसने भावविभोर होकर भगवान से प्रार्थना की – "भगवान भिक्षु-संघ सहित सावत्थी पधारें और वहां वर्षावास करें।"

भगवान ने कहा, "हे गृहपति! तथागत शून्यागार में रहना पसंद करते हैं।"

इस प्रकार उन्होंने वहां विहार बनाने की अनुमति दे दी। अनाथपिण्डिक का हृदय आनंद से भर उठा। उसने कहा – "समझ गया भगवान! ऐसा ही होगा भगवान!"

भोजनोपरांत भगवान के लौट जाने पर अनाथपिण्डिक ने अपनी व्यावसायिक यात्रा से संबंधित कार्यों को शीघ्रातिशीघ्र पूरा किया और अत्यंत प्रसन्नचित्त से सावत्थी की ओर लौट चला। इस बीच उसने भगवान के प्रमुख शिष्य आदरणीय भिक्षु सारिपुत्त से विहार निर्माण के बारे में कुछ एक आवश्यक परामर्श भी प्राप्त कर लिये।

राजगह से सावत्थी की दूरी पैंतालीस योजन थी। उन दिनों अधिकांश यात्री एक दिन में एक योजन की ही यात्रा करते थे। अतः एक-एक योजन की दूरी पर एक बड़ा गांव या निगम बसा होता था जो कि स्थानीय व्यापार का केंद्र भी होता था। यात्री यहीं रैनबसेरा करके दूसरे दिन आगे की यात्रा पर निकल पड़ते थे।

अनाथपिण्डिक उन दिनों के प्रसिद्ध व्यापारियों में से एक था। उसका व्यवसाय दूर-दूर तक देश-विदेश में तो फैला हुआ था ही, राजगह से सावत्थी तक के यातायात-मार्ग पर इन मंडियों के व्यापारियों के साथ भी उसके घनिष्ठ व्यावसायिक संबंध थे जो अत्यंत मधुर और मैत्रीपूर्ण थे। इन व्यापारियों पर उसका इस कारण भी गहरा प्रभाव था कि वह अपने व्यापार में बहुत प्रामाणिक था। कहीं किसी के साथ धोखा-धड़ी नहीं करता था। इसलिए सभी व्यापारी सदा उसके सत्परामर्श को सम्मान और विश्वास के साथ स्वीकार करते थे।

इस मार्ग के पड़ाव की प्रत्येक मंडी के व्यापारियों को उसने बताया कि संसार में बुद्ध उत्पन्न हुए हैं। वे इस समय राजगह में विहार कर रहे हैं। मैं उनसे मिला हूं। उनके उपदेशों से अत्यंत लाभान्वित हुआ हूं। मैंने उन्हें बृहत भिक्षु-संघ सहित सावत्थी आने का आमंत्रण दिया है जिसे उन्होंने कृपापूर्वक स्वीकार कर लिया है। वे इसी मार्ग से सावत्थी आयेंगे। तब एक रात आप के यहां ठहरेंगे। आप उन सबके रात्रि-निवास का तथा दूसरे दिन प्रातःकाल आगे की यात्रा के लिए प्रस्थान करने के पूर्व भोजन-दान का समुचित प्रबंध करें और इस असीम पुण्य अर्जन के शुभ अवसर का पूरा लाभ उठायें। इस सूचना और प्रस्ताव से सभी प्रसन्न हुए। उन्होंने अनाथपिण्डिक का बड़ा

उपकार माना। जिस गांव के लोग संपन्न नहीं थे और इस कारण समुचित व्यवस्था कर सकने योग्य नहीं थे उन्हें अनाथपिण्डिक ने आवश्यक आर्थिक सहायता दी ताकि किसी भी कारण किसी भी पड़ाव पर भगवान और भिक्षु-संघ को कष्ट न उठाना पड़े।

यों सारे रास्ते भगवान की यात्रा का समुचित प्रबंध करवाते हुए वह सावत्थी पहुँचा। उसने वहां शीघ्र ही तपोभूमि के अनुकूल विहार की खोज आरंभ कर दी। राजगह रहते हुए उसने सारिपुत्त से खूब समझ लिया था कि विहार कैसा बने? कहां बने? उसमें क्या-क्या सुविधाएं हों? वह ऐसे ही किसी उपयुक्त स्थान की खोज में लग गया जो कि –

- नगर से न अति दूर हो, न अति समीप।
- जहां गमनागमन की सुविधा हो,
- जहां लाभ लेने वाले लोगों के लिए आ सकने की सुगमता हो।
- जहां दिन में बहुत भीड़-भाड़ न हो,
- जहां रात में बहुत हल्ला-गुल्ला न हो,
- जहां निर्जन वातावरण हो,
- जहां राह पर लोगों का बहुत आवागमन न हो,
- जहां ध्यान की पूर्ण अनुकूलता हो।

खोजते-खोजते उसे जेत राजकुमार का उद्यान दीख पड़ा जो इस निमित्त सर्वथा अनुकूल था। उद्यान खरीदने के लिए वह जेत राजकुमार के पास गया। राजकुमार अपना उद्यान किसी कीमत पर भी नहीं बेचना चाहता था। उसने टालने के लिए उसकी कीमत कोटि-सन्थर बता दी।

अनाथपिण्डिक ने उसकी बात पकड़ ली और तत्क्षण सौदा पक्का कर लिया। बिना मन के जेत राजकुमार को अपना उद्यान बेचना पड़ा। वह स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था कि उसके उद्यान की इतनी कीमत देने के लिए कोई तैयार हो जायगा! कोटि-सन्थर का अर्थ था - करोड़ों का बिछावन। उन दिनों की बोलचाल की भाषा में इसका अर्थ था, उद्यान की

सारी भूमि पर एक किनारे से दूसरे किनारे तक सोने के सिक्कों की बिछावत करनी, यानी उसे सोने के सिक्कों से ढंकना। श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक ने यही किया। वह गाड़ियों में सोना भर-भर कर ले आया और उद्यान के एक छोर से दूसरे छोर तक बिछवाने लगा।

जिस स्थान पर भगवान विहार करेंगे और उनके सान्निध्य में अनेक साधक साधना करेंगे, उस तपोभूमि की कोई कीमत नहीं आंकी जा सकती। अनाथपिण्डिक को लगा, उस भूमि के लिए यह कीमत भी थोड़ी है। जो स्वयं धर्म-रस चख लेता है, उसके मन में यह भाव प्रबल हो ही उठता है कि ऐसा धर्म-रस अनेक लोग चखें। यहां भगवान स्वयं पधारेंगे, तब अनेक व्यक्तियों को यह सुविधा मिलनी सहज हो जायगी। वह अत्यंत प्रसन्न चित्त से जेतवन को सोने की मोहरों से ढंकवाये जा रहा था। उसका मन इसी चिंतन-मनन में लगा हुआ बांसों उछल रहा था कि उसकी संपत्ति का कैसा सदुपयोग होने जा रहा है।

राजकुमार यह सब देख कर अवाक रह गया। उसने सोचा, अवश्य इस भूमि पर कोई अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य होने जा रहा है, अन्यथा यह सांसारिक नगरश्रेष्ठी इसके लिए इतना धन कदापि व्यय नहीं करता। जब उसने जाना कि उसका यह उद्यान किसलिए खरीदा जा रहा है तब वह भावविभोर हो उठा। तब तक बाकी सारी जमीन पर स्वर्ण मुद्राएं बिछायी जा चुकी थीं। केवल एक कोना बचा था। अनाथपिण्डिक ने इसे ढंकने के लिए गाड़ियों से और सोना लाने का आदेश दिया, परंतु जेत राजकुमार ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा – बस कर, श्रेष्ठी इस खाली (जमीन) को मत ढक। इस पर स्वर्ण मत बिछा। मुझे अवसर दे जिससे कि यह मेरा दान हो।

अनाथपिण्डिक ने उसकी बात यह सोच कर मान ली कि राजकुमार नगर का प्रसिद्ध व्यक्ति है। ऐसे व्यक्ति का इस कार्य में सहयोगी होना अच्छा ही होगा। वैसे भी मेरे इस अपरिमित पुण्य कार्य में कोई भागीदार बनना चाहे तो मैं बाधक क्यों बनूं!

जो भूमि राजकुमार के दान के हिस्से में आयी वह मार्ग के समीप थी, अतः राजकुमार ने उस स्थान पर विहार का मुख्य द्वार बनवाया, एक विशाल ड्योढ़ी बनवायी।

अनाथपिण्डिक ने शेष भूमि पर विहार बनवाये, परिवेण बनवाये, कोठे बनवाये, सभागृह बनवाये, पानी गर्म करने के लिए अग्निशालाएं बनवायीं, भंडारघर बनवाये, पेशाब-पाखाने के स्थान बनवाये, खुले चंक्रमण बनवाये, चंक्रमण शालाएं बनवायीं, पानीघर बनवाये, प्याऊ बनवाये, स्नानागार बनवाये, स्नानशालाएं बनवायीं, पुष्करणियां बनवायीं और मंडप बनवाये जिससे कि हजारों भिक्षु और साधक भगवान के सान्निध्य में सुविधापूर्वक रह कर ध्यान कर सकें। अनाथपिण्डिक ने अट्ठारह करोड़ के मूल्य की स्वर्णमुद्राएं बिछवा कर जिस धरती को खरीदा, उस पर और अट्ठारह करोड़ खर्च कर ये आवश्यक निर्माण कराये तथा भगवान के जेतवन आगमन पर नौ माह तक चले विहार-पूजोत्सव में अट्ठारह करोड़ खर्च किये। इस प्रकार उसने ५४ करोड़ का दान दिया। भगवान के इस परम श्रद्धालु, गृहस्थ शिष्य ने दान के इतिहास में सदा के लिए एक अतुलनीय समुज्ज्वल कीर्तिमान स्थापित किया।

अनाथपिण्डिक का यह महार्घ दान सचमुच अनुपम था, असीम पुण्यफलदायी था। अपनी कल्याणकारिणी धर्मचारिका के ४५ वर्षों में से २५ वर्षों का वर्षावास भगवान बुद्ध ने सावत्थी में किया। इस विहार में दस हजार साधकों के रहने और ध्यान कर सकने की सुख-सुविधाएं उपलब्ध थीं। भिक्षुओं के अतिरिक्त लाखों की संख्या में नगर-निवासी गृहस्थों ने यहां आकर भगवान की अमृतवाणी का रसपान किया। उनके बताये अष्टांगिक मार्ग पर चले। शील का पालन करते हुए समाधि का अभ्यास किया और अपनी प्रज्ञा जागृत कर उनमें से अनेक सोतापन्न अवस्था को प्राप्त हुए और इस प्रकार अपनी भवमुक्ति निश्चित कर ली। यों अनाथपिण्डिक का यह महार्घ दान पूर्णतया सफलीभूत हुआ।

धर्म की स्वस्थ परंपरा में कोई व्यक्ति किसी विहार का दान देकर उस पर अपना नाम नहीं लिखवाता, क्योंकि वह अपनी प्रसिद्धि के लिए दान नहीं देता। महज लोक-कल्याण के उद्देश्य से दान देता है। लेकिन फिर भी इतना बड़ा दान देने के कारण प्रसिद्धि अपने आप हो जाती है। भगवान के जीवनकाल में यहां अनेक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाएं घटीं। यहीं उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण उपदेश दिये। अनेकों को भवमुक्त होने की विपस्सना विद्या सिखायी।

कोशल का भाग्य जागा

विहार बन जाने के उपरांत श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक ने भगवान को सूचना देने और उन्हें ले आने के लिए दूत भेजा। दूत का संदेश पाकर महान भिक्षु-संघ के साथ भगवान राजगह से सावत्थी के लिए निकल पड़े। श्रेष्ठी सुदत्त ने पहले से ही रास्ते में विहार और भोजन-दान की उत्तम व्यवस्था कर रखी थी जिससे कि बुद्ध और भिक्षु-संघ को कोई कष्ट न हो। इधर जेतवन में तो बुद्ध और संघ के स्वागत-सत्कार, पूजन-वंदन की भव्य तैयारियां थीं ही। कोशलनरेश से श्रेष्ठी ने निवेदन किया – "महाराज शास्ता का यहां आगमन मेरे लिए मंगलकारी है, आपके लिए मंगलकारी है, सावत्थी और पूरे कोशल के लिए मंगलकारी है। इसे पूरे कोशल का भाग्य समझें।"

तथागत के जेतवन में प्रवेश करने के दिन श्रेष्ठी अपने पूरे परिवार तथा नगर के अन्य उपासक-उपासिकाओं के साथ भगवान की अगवानी के लिए चला।

उपासक-उपासिकाओं की मंडली आगे जा रही थी। महाभिक्षुसंघ से घिरे हुए भगवान, जेतवन को अपनी सुनहरी शरीर-प्रभा से रंजित करते हुए, अनंत बुद्ध-लीला और अतुलनीय शोभा के साथ जेतवन में प्रविष्ट हुए। तब श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक ने भगवान से पूछा –

"भंते! मैं इस विहार के विषय में क्या करूं?"

"गृहपति! यह विहार आये हुए तथा न आये हुए भिक्षु-संघ को दान कर दे।"

'अच्छा भंते! कह श्रेष्ठी ने "मैं यह जेतवन विहार सब दिशा और सब काल के बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को देता हूं" कहते हुए प्रदान कर दिया।

शास्ता ने विहार को स्वीकार कर दान की प्रशंसा करते हुए कहा –

"यह गर्मी-सर्दी से, हिंस्र जंतुओं से, रेंगने वाले जानवरों से, मच्छरों से, बूंदा-बाँदी से, वर्षा से और घोर हवा-धूप से रक्षा करता है। यह आश्रय के लिए, सुख के लिए, ध्यान के लिए और योगाभ्यास के लिए उपयोगी है, इसीलिए बुद्ध ने विहार-दान को श्रेष्ठ-दान (अग्रदान) कह, उसकी प्रशंसा की है। अपनी भलाई चाहने वाले पुरुष को चाहिए कि सुंदर विहार बनवाये और उनमें बहुश्रुतों को निवास कराये और प्रसन्न-चित्त उन सरल चित्त वालों को अन्न-पान, वस्त्र तथा निवास (शयनासन) प्रदान करे। तब ऐसा करने पर वे सब दुःखों के नाश करने वाले धर्म का उपदेश करते हैं, जिसे जान कर वह मलरहित (=अनाश्रव) परिनिर्वाण को प्राप्त होगा।"

इस प्रकार भगवान ने विहार दान का माहात्म्य कहा।

आनन्दबोधि

कोशलदेश की राजधानी सावत्थी। श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक ने करोड़ों की संपदा लगाकर जेतवन में महाविहार बनवाया। भगवान वर्षावास के दिनों में उस विहार में रहते और लोगों को धर्म सिखाते। वर्षावास के बाद वे अन्य प्रदेशों के लोगों को धर्म बाँटने के लिए चारिका के लिए निकल पड़ते। भगवान के निवासकाल में विहार में जो चहल-पहल रहती वह उनकी अनुपस्थिति में बहुत कम हो जाती। वातावरण उतना जीवंत नहीं रहता, फीका पड़ जाता। कुछ एक नगर-वासी भक्तजन विहार में आते। भगवान के निवास की खाली कुटी के सामने श्रद्धा के फूल चढ़ाकर चले जाते। पर उन्हें संतोष नहीं होता। श्रद्धा व्यक्त करने के लिए उन्हें कोई ठोस आधार चाहिए था। श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक को यह कमी खलती। लोग चाहते थे कि भगवान की अनुपस्थिति में वहां कोई मंदिर हो जहां वे अपनी श्रद्धा प्रकट कर सकें। उन दिनों यह प्रथा थी। लोग अपने श्रद्धाभाजन देवी, देवता,

यक्ष, ब्रह्म अथवा संतों के नाम पर चैत्य बनाते थे, मंदिर बनाते थे। इनमें अपने इष्ट की मूर्ति अथवा चिह्न स्थापित करते थे। इन चैत्यों व देव-स्थानों पर अकेले अथवा समूह में भक्तजन जाते, पूजन-अर्चन करते, पत्र-पुष्प चढ़ाते, धूप-दीप जलाते, मनौती मनाते और मनौती पूरी होने पर उत्सव-मंगल मनाते। यों इन देव-स्थानों पर बड़ी धूम-धाम और चहल-पहल बनी रहती।

श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक चाहता था कि ऐसा ही कुछ जेतवन पर भी हो, जिससे भगवान की अनुपस्थिति में भी वहां चहल-पहल बनी रहे। उसने अपनी मनोकामना भिक्षु आनन्द के सामने प्रकट की। आनन्द ने बहुत व्यवहार-कौशल्य से यह बात भगवान तक पहुँचायी। उसने भगवान से पूछा –

"भंते भगवान! चैत्य कितने प्रकार के होते हैं?"

भगवान ने कहा, "तीन प्रकार के – शारीरिक, उद्देसिक और पारिभोगिक।" आनन्द ने पूछा "भगवान! क्या बुद्ध के जीते जी उनके नाम पर कोई चैत्य बनाया जा सकता है?"

भगवान ने कहा "शारीरिक चैत्य तथागत के शरीर त्यागने पर उनके अस्थि-अवशेषों पर ही बन सकता है। उद्देसिक चैत्य में मूर्ति, चिह्न आदि की स्थापना द्वारा मनोकल्पना की प्रमुखता होती है जो कि अवांछनीय है। हां, पारिभोगिक चैत्य तथागत के जीवनकाल में भी वन सकता है।"

आनन्द ने अनाथपिण्डिक की इच्छा सामने रखते हुए जेतवन में ऐसा एक पारिभोगिक चैत्य स्थापित करने की भगवान से स्वीकृति मांगी ताकि उनकी अनुपस्थिति में जेतवन जनशून्य और उत्साहशून्य न हो जाया करे।

यह तो स्पष्ट था कि भगवान के परिनिर्वाण के बाद उनके द्वारा प्रयोग में लाये हुए भिक्षापात्र, चीवर, लकुटी आदि वस्तुओं पर चैत्य बनने लगेंगे। परंतु जीते जी वे ऐसी परंपरा स्थापित करना चाहते थे जो कि परम अर्थ के क्षेत्र में स्वस्थ हो, कल्याणकारिणी हो। वह अपनी उपभोग की हुई किसी भौतिक वस्तु पर कोई चैत्य बनवाना नहीं चाहते थे। लोकोत्तर निर्वाण की प्राप्ति के लिए जिसका उपभोग किया वह तो वोधिवृक्ष था। अतः आनन्द

का ध्यान उसी ओर खींचते हुए भगवान ने कहा, "तथागत के जीते जी बोधिवृक्ष ही पारिभोगिक चैत्य होता है जिसकी छाया में बैठकर अन्य लोग भी निर्वाण के सुख का रसास्वादन कर सकें।"

आनन्द को यह बात बहुत भायी। उसने महामोग्गल्लान से प्रार्थना की और उनके जरिए बोधगया के बोधिवृक्ष का बीज मंगवाया और महाराज पसेनदि, माता विशाखा तथा अन्यान्य भक्तों की उपस्थिति में जेतवन के मुख्य द्वार के समीप श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक द्वारा इसका आरोपण करवाया। जब वृक्ष बढ़कर तैयार हुआ तब चूंकि यह आनन्द के सत्प्रयत्नों से लगाया गया था इसलिए यह वृक्ष 'आनन्दबोधि' कहलाया।

आनन्द ने भगवान से प्रार्थना की कि जिस प्रकार उन्होंने बोधिवृक्ष के नीचे रात भर साधना की थी, उसी प्रकार यहां भी करें। पहली बार सम्यक-संबोधि जगाने वाली साधना तो अद्वितीय ही होती है। फिर भी भगवान ने साधकों के कल्याण के लिए आनन्दबोधि के नीचे एक पूरी रात निरोध समापत्ति की साधना की और उस स्थान के अणु-अणु को निर्वाणधातु और धर्मधातु की तरंगों से आप्लावित कर चिरकाल के लिए परम पावन बना दिया।

सर्वसाधारण सामान्य गृहस्थ ही नहीं, अनेक ऐसे भिक्षु भी जो कि भगवान के साधना-संबंधी गंभीर धर्म में परिपक्व नहीं हो पाये थे, वे भगवान के जीवनकाल में ही इस आनन्दबोधि रूपी चैत्य पर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पुष्प आदि चढ़ाकर पुण्य अर्जित करते रहे और यह परंपरा आगे भी चलती रही। परंतु साथ-साथ एक अन्य परंपरा गंभीर साधकों की भी थी। उन्होंने भगवान के जीवनकाल में और तत्पश्चात भी आनन्दबोधि का उपयोग साधना के लिए किया। आनन्दबोधि आज भी जीवित है। संभवतः यह संसार का सबसे पुरातन बूढ़ा वृक्ष है। भारतवर्ष में पुनर्जागृत विपस्सना के गंभीर साधक आज भी जब इस पावन वृक्ष के नीचे बैठकर विपस्सना साधना करते हैं तो देखते हैं कि कितना शीघ्र उनका मानस अनित्यबोध की धर्म-तरंगों से आप्लावित होने लगता है।

ऐसा पुनीत परिवार

भार्या एवं बेटी महासुभद्दा

भगवान बुद्ध के प्रथम सावत्थी आगमन पर श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक का पूरा परिवार उनके स्वागत-सत्कार में जुट गया। श्रेष्ठी की भार्या और बेटी महासुभद्दा ने भगवान तथा भिक्षु-संघ की अगवानी की। सावत्थी में प्रतिदिन अनाथपिण्डिक के घर में दो हजार भिक्षु भोजन किया करते थे। भोजन के समय श्रेष्ठी स्वयं उपस्थित रहता और पूरे सम्मान के साथ भिक्षुओं को भोजन कराता। धीरे-धीरे बुद्ध, धर्म और संघ के प्रति लोगों में श्रद्धा बढ़ने लगी। कुछ दिनों बाद अन्य घरों से भी भिक्षु भोजन-दान हेतु आमंत्रित किये जाने लगे। भिक्षु-संघ की रुचि और उपयुक्तता का ख्याल करते हुए अनाथपिण्डिक उन घरों में जाकर भोजन की व्यवस्था कराने में सुझाव देता और सहयोग करता। इसलिए अपनी अनुपस्थिति में घर पर भिक्षु-संघ के भोजन-दान की जिम्मेदारी उसने अपनी पत्नी और बड़ी बेटी को दे दी। दोनों मां-बेटी पूरे समर्पित भाव से भिक्षु-संघ की सेवा में लगी रहतीं और धर्मोपदेश सुनतीं। दोनों मां-बेटी सोतापन्न अवस्था को प्राप्त हुईं।

सोतापन्न चुल्लसुभद्दा

चुल्लसुभद्दा महाश्रेष्ठी सुदत्त की दूसरी बेटी थी। विवाह हो जाने के बाद जब बड़ी बेटी महासुभद्दा अपनी ससुराल चली गयी, तब चुल्लसुभद्दा ही भिक्षु-संघ की सेवा में अपनी मां की सहायता करती। भिक्षुओं से धर्मोपदेश सुनकर विपस्सना का अभ्यास करती हुई वह सोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हो चुकी थी।

कुछ दिनों बाद श्रेष्ठी ने उसका विवाह साकेत नगर के कालक श्रेष्ठी के पुत्र के साथ तय करने का निश्चय किया। पर श्रेष्ठी कालक मिथ्यादृष्टिक था। विधिवत विवाह संपन्न हुआ। बड़ी धूमधाम के साथ महाश्रेष्ठी ने बेटी की

विदाई की। ससुराल में भी कालक श्रेष्ठी ने विशिष्ट लोगों के साथ उपस्थित रहते बहू चुल्लसुभद्दा का बड़े आदर से स्वागत-सत्कार किया।

बहू के आगमन पर श्रेष्ठी ने मंगल उत्सव मनाने का निश्चय किया। इस उद्देश्य हेतु उसने पांच सौ अचेलक साधुओं को निमंत्रित किया। उनके लिए विविध प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन तैयार करवाये। अचेलक साधुओं के आने पर ससुर कालक ने बहू चुल्लसुभद्दा को उनका अभिनंदन करने के लिए बुलाया, "बेटी आकर अर्हतों की वंदना करो।"

आर्य-श्राविका चुल्लसुभद्दा ने अर्हतों के आने की बात सुनी तो अपना भाग्य सराहा, "यह मेरा बड़ा लाभ है।" उनके अभिनंदन के लिए वह तुरंत चल पड़ी। ज्योंही उसकी दृष्टि नग्न अचेलक साधुओं पर पड़ी, वह वहीं की वहीं ठिठक गयी। उसके मुंह से निकला, "अरे! श्रमण ऐसे नहीं होते हैं। छि! छि! इन्हें तनिक भी लज्जा नहीं" कहते हुए वह अपने कमरे में चली आयी।

इस व्यवहार से नाराज अचेलकों ने श्रेष्ठी को अनेक अपशब्द कहते हुए बुरी तरह डांटा, "कहां से तू यह असभ्य बहू लाया है? पूरे जंबुद्वीप में तुझे कोई कन्या नहीं मिली? संतों का ऐसा अपमान!"

बहू के इस व्यवहार पर ससुर आगबबूला हो उठा, "इसने हमारे श्रमणों का अपमान किया है। इसे घर से बाहर निकालो। अब इस घर में इसे नहीं रहने दूंगा।"

चुल्लसुभद्दा ने अपने कुटुंबियों को बुलवाकर अपने निर्दोष होने की सारी बात बतायी। उन्होंने उसका निर्दोष भाव जान कर श्रेष्ठी को समझाया।

कालक श्रेष्ठी ने बहू द्वारा अचेलक साधुओं के अपमान की बात अपनी पत्नी को बतायी। श्रेष्ठी की पत्नी ने "इसके श्रमण किस तरह के हैं, जिनकी यह अत्यंत प्रशंसा करती है" सोचकर बहू को बुलवाकर उससे पूछा।

तब सुभद्दा ने बुद्ध और बुद्धश्रावकों के गुणों को प्रकाशित करते हुए कहा –

"शांत इंद्रिय, शांतचित्त, शांतचेष्ट हैं, श्रेष्ठ गुणों में प्रतिष्ठापित नीची नजरवाले, मितभाषी हैं; इस तरह के हैं मेरे श्रमण।

"उनके कायिक, वाचिक तथा मन के कर्म विशुद्ध हैं; इस तरह के हैं मेरे श्रमण।

"विमल शंख से मुक्ता प्रभा से युक्त, अंदर और बाहर से शुद्ध, शुद्ध धर्मों से पूर्ण हैं; इस तरह के हैं मेरे श्रमण।

"लोग लाभ से उन्नत (सुखी) और हानि से अवनत (दुःखी) होते हैं। लाभ-हानि में जो एक-समान रहते हैं; इस तरह के हैं मेरे श्रमण।

"लोग यश से उन्नत और अपयश से अवनत होते हैं। यश-अपयश में जो एक-समान रहते हैं; इस तरह के हैं मेरे श्रमण।

"लोग प्रशंसा से उन्नत और निंदा से अवनत होते हैं। प्रशंसा-निंदा में जो एक-समान रहते हैं; इस तरह के हैं मेरे श्रमण।

"लोग सुख से उन्नत और दुःख से अवनत होते हैं। जो सुख-दुःख में कंपित नहीं होते हैं; इस तरह के हैं मेरे श्रमण।

बुद्धश्रावकों के गुण सुनकर सास प्रसन्न हुई। बहू से उसने पूछा –

"क्या तेरे श्रमणों को मैं भी देख सकती हूं?"

"अवश्य, देख सकती हैं।"

"अगर ऐसा संभव हो, तो उनके लिए उपाय करो।"

उसने 'साधु' कहकर बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ के लिए महादान की तैयारी करके महल की ऊपरी मंजिल पर खड़े होकर जेतवन की दिशा में मुख करके, बुद्धगुणों का स्मरण करके "भंते! कल के लिए बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को निमंत्रण देती हूं, मेरे इस संकेत से शास्ता निमंत्रित भाव जानें" कहकर आठ अंजलि पुष्पों को आकाश में फेंका।

उस समय अनाथपिण्डिक ने भी धर्मकथा सुनकर अगले दिन के लिए शास्ता को निमंत्रित किया। शास्ता ने कहा –

"गृहपति! कल के भोजन के लिए मैंने पहले ही निमंत्रण स्वीकार कर लिया है।"

"भंते! मुझसे पहले कोई नहीं आया है। किसके निमंत्रण को आपने स्वीकार किया है?"

"चुल्लसुभद्दा से निमंत्रित हूं, गृहपति।"

"भंते! चुल्लसुभद्दा तो यहां से बीस योजन दूर रहती है न?"

"हां, गृहपति! दूर रहते हुए भी सत्पुरुष सामने स्थित हुए जैसे प्रकाशित होते हैं, कहकर शास्ता ने यह गाथा कही –

"दूरे सन्तो पकासेन्ति, हिमवन्तोव पब्बतो ।

असन्तेत्थ न दिस्सन्ति, रत्तिं खित्ता यथा सरा ॥"

– *धम्मपद ३०४, पकिण्णकवग्ग*

'संत लोग (बुद्ध) हिमालय पर्वत की तरह दूर से भी प्रकाशित होते हैं। असंत (अशांत, मूर्ख) लोग, रात में फेंके गये तीर की भांति नहीं दिखाई देते हैं।'

"भगवान, बेटी पर अनुकंपा करें।" यह कह कर गृहपति सुदत्त भगवान की वंदना कर लौट गया।

भगवान ने आनन्द थेर को संबोधित किया – आनन्द, मैं साकेत जाऊंगा, पांच सौ परम ज्ञानी भिक्षुओं का चयन करो। थेर ने वैसे ही किया।

चुल्लसुभद्दा ने मध्य रात्रि में सोचा – बुद्धों को बहुत काम होते हैं, उन्हें बहुत कुछ करना पड़ता है, मेरे ऊपर विचार किया या नहीं, मैं क्या करूंगी। उस समय वेस्सवण महाराजा ने चुल्लसुभद्दा को कहा – 'भद्रे! तुम उदास मत हो, दुःखी मत हो। भगवान ने पांच सौ भिक्षुओं के साथ कल के लिए तुम्हारा निमंत्रण स्वीकार कर लिया है। बहुत हर्षित होकर उसने दान की तैयारी की। शक्र देवराज ने विश्वकर्मा को संबोधित किया – 'तात, दसबल चुल्लसुभद्दा के पास साकेत नगर जायेंगे, पांच सौ कूटागारों का निर्माण करो।' उसने वैसा ही किया। शास्ता छः अभिज्ञाओं से संपन्न पांच सौ भिक्षुओं सहित साकेत नगर पहुँचे।

सुभद्दा ने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को दान देकर उनकी वंदना की और कहा – "भंते, मेरी ससुराल के लोग मिथ्या दृष्टिवाले हैं, अच्छा हो यदि उनके लायक आप धर्मकथा कहें।"

शास्ता ने धर्मोपदेश दिया। कालक श्रेष्ठी सोतापन्न हुआ और उसने अपना उद्यान दसबल को दिया। अचेलक साधु उस उद्यान से बाहर नहीं निकलना चाहते थे, क्योंकि उनका कहना था कि उद्यान पहले उन्हें दिया गया था।

गृहपति कालक के कहने पर नियमानुसार वह उद्यान खाली कराया गया। श्रेष्ठी ने शास्ता के लिए वहां विहार बनवाया। साकेत में श्रेष्ठी द्वारा बनवाये गये इस विहार का नाम 'कालकाराम' पड़ा।

सकदागामी सुमनदेवी

श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक की तीन बेटियों में सुमनदेवी सबसे छोटी थी। विवाह हो जाने के पश्चात दोनों बड़ी बेटियां अपनी-अपनी ससुराल चली गयीं। अब सुमनदेवी भगवान और भिक्षु-संघ की सेवा में अपनी मां की सहायता करती। भगवान से धर्मोपदेश सुनते हुए वह सकदागामी फल में प्रतिष्ठित हुई। अभी वह कुमारी ही थी कि अचानक अस्वस्थ हो गयी। भोजन, पानी आदि छोड़ दिया। उसी हालत में उसने पिता से मिलने की इच्छा व्यक्त की। उस समय अनाथपिण्डिक किसी और दानशाला में था। पुत्री का संदेश सुनकर श्रेष्ठी ने तुरंत आकर बेटी का हाल पूछा। सुमन ने कहा –

"क्या तात, छोटे भाई।"

"बेटी, क्या तुम प्रलाप कर रही हो?"

"मैं प्रलाप नहीं कर रही हूं, छोटे भाई।"

"तो, क्या डर रही हो बेटी?"

"डर नहीं रही हूं, छोटे भाई।" इतना कह कर वह मर गयी।

श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक स्रोतापन्न होते हुए भी बेटी की मृत्यु से उत्पन्न शोक सहन नहीं कर सका, बेटी का दाहसंस्कार करवा, रोते हुए शास्ता के पास गया। शास्ता ने पूछा –

"क्यों गृहपति, दुःखी, अप्रसन्न होकर अश्रुमुख हो, रोते हुए आये हो?"

"भंते! मेरी बेटी सुमन मर गयी है।"

"क्यों इसके लिए चिंता करते हो? सबकी मृत्यु तो निश्चित है न?"

"जानता हूं, भंते। इस तरह के पाप के प्रति लज्जा और भय से संपन्न बेटी, मृत्यु के समय बेटी अपनी स्मृति में प्रतिष्ठित नहीं रह सकी और प्रलाप करती हुई मर गयी। इससे मेरे मन में बड़ी व्याकुलता पैदा हुई।"

"उसने क्या कहा, महाश्रेष्ठी?"

"भंते! मैंने उसे 'सुमन' कह संबोधित किया। उसने मुझे कहा – 'क्या तात, छोटे भाई।'

बेटी 'क्या तुम प्रलाप कर रही हो', ऐसा मेरे कहे जाने पर उसने कहा – 'प्रलाप नहीं कर रही हूं, छोटे भाई।'

'क्या डर रही हो?' ऐसा मेरे पूछने पर उसने कहा – 'मैं डर नहीं रही हूं, छोटे भाई।' इतना कह कर वह मर गयी।

"तुम्हारी बेटी ने प्रलाप नहीं किया, महाश्रेष्ठी।"

"तब उसने ऐसा क्यों कहा?"

"तुम्हारी कनिष्ठता के कारण, गृहपति। मार्गफलों की प्राप्ति में तुम्हारी बेटी तुमसे वरिष्ठ थी। तुम स्रोतापन्न हो और वह थी सकृदागामी। मार्गफलों में तुमसे बड़ी होने के कारण उसने तुम्हें 'छोटा भाई' कह कर संबोधित किया।"

"ऐसा है, भंते!"

"हां, गृहपति।"

"भंते, अब उसने कहां जन्म ग्रहण किया है?"

"तुषित देवलोक में, गृहपति।"

"भंते! मेरी बेटी यहां रिश्तेदारों के बीच आनंद से चलती-फिरती थी, यहां से जाकर भी आनंद की जगह में ही पैदा हुई।"

"हां, गृहपति! अप्रमाद वाला गृहस्थ हो अथवा प्रव्रजित, इस लोक में और परलोक में आनंदित रहता है, कहकर भगवान ने यह गाथा कही –

"इध नन्दति पेच्च नन्दति, कतपुञ्ञो उभयत्थ नन्दति।
पुञ्ञं मे कतन्ति नन्दति, भिय्यो नन्दति सुग्गतिं गतो॥"

– *धम्मपद-अट्ठकथा १.१८, सुमनादेवीवत्थु*

यहां (इस लोक में) आनंदित होता है, प्राण छोड़ कर (परलोक में) आनंदित होता है। पुण्यकारी दोनों जगह आनंदित होता है। 'मैंने पुण्य किया है' – इस (चिंतन) से आनंदित होता है (और) सुगति को प्राप्त होने पर और भी (अधिक) आनंदित होता है।

ऐसे सिखाया धर्म

अनाथपिण्डिक को तीन बेटियों के अतिरिक्त काल नामक एक बेटा था। परिवार के सदस्यों में बुद्ध, धर्म तथा संघ के प्रति अटूट श्रद्धा के विपरीत बेटा न तो शास्ता के पास जाना चाहता था, न शास्ता के घर आने पर उन्हें देखना चाहता था, न धर्म सुनना चाहता था, न संघ की सेवा करना चाहता था। पिता के "बेटा, ऐसा मत करो" कहने पर भी उसकी बात न सुनता था। तब पिता ने सोचा, – "यह इस तरह मिथ्यादृष्टिक होकर नरकगामी होगा। यह ठीक नहीं है कि मेरे देखते-देखते ही मेरा बेटा नरक में जाय।"

इसी उधेड़बुन में उसे एक उपाय सूझा। अनाथपिण्डिक एक महान व्यापारी था। धन की अपार शक्ति का उसे व्यावहारिक अनुभव था। उसने सोचा, "इस संसार में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसे धन से प्रभावित न किया जा सके। इसे मैं धन से नियंत्रित करूंगा।" ऐसा विचार कर उसने

अपने बेटे से कहा, "पुत्र, यदि तू उपोसथ व्रत पालन करते हुए विहार में धर्मोपदेश सुनकर आए तो मैं तुम्हें एक सौ स्वर्ण मुद्राएं दूंगा।"

उसने आश्चर्य से पूछा, "देंगे, पिता जी?" "दूंगा, बेटा।" इस प्रकार उसने तीन बार पिता से यही प्रश्न किया जिसका तीनों बार उसे सकारात्मक उत्तर मिला। पर काल को तो धर्मोपदेश सुनने में कोई रुचि नहीं थी। रातभर किसी सुविधाजनक स्थान पर सोया रहा और सुबह वह घर वापस आ गया।

बेटे को देखकर बड़े ही प्यार से पिता ने कहा, "मेरा बेटा उपोसथ व्रत से लौटा है, जल्दी से इसके लिए यवागु लाओ।" पर, बेटे ने पिता को उसकी प्रतिज्ञा याद दिलाते हुए कहा, "बिना मुद्राओं के मैं नहीं खाऊंगा।" ऐसा कहते हुए उसने लाये गये भोज्य पदार्थों को एक तरफ कर दिया। पुत्र के इस व्यवहार से पिता को भारी आघात लगा। पिता ने उसे मुद्राओं का भंडार दिलवाया। उसने उसे हाथ से पकड़ कर ही खाना खाया।

अगले दिन श्रेष्ठी ने और अधिक पुरस्कार देने की बात कही, "बेटा, शास्ता के सामने ठहर कर एक धर्मपद सीख कर आ, तुझे एक हजार कार्षापण दूंगा।" वह शास्ता के सामने ठहर कर एक धर्मपद सीख कर आ जाना चाहता था। तब शास्ता ने कुछ ऐसा किया कि सीखा हुआ पद वह भूल जाय। सीखा पद भूल जाने पर काल ने सोचा, "अब आगे का सीखकर चल दूंगा।" इसी प्रकार सीखता, ध्यान से सुनता पर भूल जाता। वह "आगे का पद सीखूंगा" सोच के ठहर कर सुनते-सुनते ही सोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हो गया।

उसने अगले दिन बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ के साथ सावत्थी में प्रवेश किया। महाश्रेष्ठी ने उसे देख कर सोचा कि आज मेरे बेटे का मुखमंडल अच्छा लगता है। उसे भी ऐसा लगा कि ओह! मेरे पिता आज मुझे शास्ता के पास रहते कार्षापण न दे दें, कार्षापण के कारण उसके उपोसथभाव को जान लिया था। महाश्रेष्ठी ने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को यवागु दिलवा कर बेटे को भी दिलवाया। उसने बैठ कर मौन रहकर ही यवागु पिया, खाद्य खाया और भात खाया। महाश्रेष्ठी ने शास्ता के भोजन करने के बाद बेटे के सामने हजार कार्षापण रखकर कहा – "बेटा, मैंने 'तुझे हजार दूंगा।' कहकर उपोसथ के लिए प्रेरित करके विहार भेजा था। यह हजार तेरे लिए।" उसने शास्ता के सामने कार्षापण दिये जाते हुए देखकर लज्जित होकर कहा – "मुझे कार्षापण नहीं चाहिए।" "ले लो बेटा" ऐसा कहे जाने पर भी नहीं लिया। तब अनाथपिण्डिक ने शास्ता की वंदना करके कहा – "भंते, आज मेरे बेटे का मुखमंडल अच्छा लगता है। मैंने इसे पिछले दिन 'सौ कार्षापण तुझे दूंगा' कहकर विहार भेजा था। कल कार्षापण बिना लिये खाना नहीं खाना चाहा। आज तो कार्षापण दिये जाने पर भी नहीं लेना चाहता है।" शास्ता ने, "हां, महाश्रेष्ठी आज तुम्हारे बेटे को चक्रवर्ती की संपत्ति से भी, देवलोक, ब्रह्मलोक की संपत्तियों से भी बढ़कर सोतापत्ति फल की श्रेष्ठ संपत्ति मिल गयी है।" कहकर यह गाथा कही –

"पथब्या एकरज्जेन, सग्गस्स गमनेन वा।
सब्बलोकाधिपच्चेन, सोतापत्तिफलं वरं॥"

– धम्मपद-अट्ठकथा २.१७८, अनाथपिण्डकपुत्तकालवत्थु

[पूरी पृथ्वी के एकच्छत्र राज्य से, स्वर्ग जाने से, सब लोकों के आधिपत्य से, सोतापत्ति फल श्रेष्ठ होता है।]

"दासी-समान" भार्या

तब भगवान पूर्वाह्न समय पात्र चीवर ले, अनाथपिण्डिक गृहपति के घर पहुँचे। पहुँचकर आसन पर बैठे। उस समय अनाथपिण्डिक गृहपति के घर पर लोग बहुत ऊँचे-ऊँचे स्वर में बोल रहे थे, हल्ला मचा रहे थे। तब अनाथपिण्डिक गृहपति भगवान के पास आया। पास आकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हुए अनाथपिण्डिक गृहपति को भगवान ने यह कहा – "हे गृहपति! तुम्हारे घर में लोग बहुत ऊँचे-ऊँचे बोल रहे हैं, बहुत हल्ला क्यों कर रहे हैं, मानो मछुआरे मछलियों के लिए झगड़ रहे हों?"

"भंते! मेरी पुत्र-वधू सुजाता धनी घर से आयी है। न यह सास का आदर करती है, न ससुर का, न स्वामी का और न भगवान का ही सत्कार करती है।"

तब भगवान ने पुत्र-वधू सुजाता को आमंत्रित किया – "सुजाते! यहां आ।"

सुजाता ने 'भंते! अच्छा' कह भगवान को प्रतिवचन दिया और भगवान के पास जाकर उन्हें नमस्कार कर एक ओर बैठ गयी।

एक ओर बैठी हुई सुजाता से भगवान ने कहा –

"सुजाता! आदमी की सात प्रकार की भार्याएं होती हैं।"

"कौन-सी सात प्रकार की?"

"वधक (जल्लाद) जैसी, चोर जैसी, मालकिन जैसी, माता जैसी, बहिन जैसी, सखी जैसी, दासी जैसी। इनमें से तू कौन-सी है?"

"भंते, भगवान के इस संक्षिप्त कथन का मैं विस्तारपूर्वक अर्थ नहीं जानती। अच्छा हो यदि आप मुझे ऐसा धर्मोपदेश दें जिससे मैं आपके इस संक्षिप्त कथन का विस्तारपूर्वक अर्थ जान सकूं।"

"सुजाता! तो सुन। अच्छी तरह मन में धारण कर। कहता हूं।"

"भंते अच्छा!" कह पुत्र-वधू सुजाता ने भगवान को प्रतिवचन दिया। तब भगवान ने यह कहा –

"पदुट्ठचित्ता अहितानुकम्पिनी,
अञ्ञेसु रत्ता अतिमञ्ञते पतिं।
धनेन कीतस्स वधाय उस्सुका,
या एवरूपा पुरिसस्स भरिया।
'वधा च भरिया'ति च सा पवुच्चति॥"

[जो दूषित चित्तवाली होती है, जो अहित चाहने वाली होती है, जो पति की उपेक्षा कर अन्यों के प्रति अनुरक्त रहती है, जो धन द्वारा क्रीत के

वध के लिए उत्सुक रहती है – पुरुष की इस प्रकार की भार्या 'वधक जैसी भार्या' कहलाती है।]

"यं इत्थिया विन्दति सामिको धनं,
सिप्पं वणिज्जं च कसिं अधिट्ठहं।
अप्पम्पि तस्स अपहातुमिच्छति,
या एवरूपा पुरिसस्स भरिया।
'चोरी च भरिया'ति च सा पवुच्चति॥"

[जो शिल्प, वाणिज्य वा कृषि से प्राप्त धन स्वामी स्त्री को देता है, वह उसमें से कुछ भी नहीं छोड़ती है – पुरुष की इस प्रकार की भार्या 'चोर जैसी भार्या' कहलाती है।]

"अकम्मकामा अलसा महग्घसा,
फरुसा च चण्डी दुरुत्तवादिनी।
उट्ठायकानं अभिभुय्य वत्तति,
या एवरूपा पुरिसस्स भरिया।
'अय्या च भरिया'ति च सा पवुच्चति॥"

[जो निकम्मी रहने वाली, आलस्य-प्रधान, खूब खाने-पीने वाली, कठोर स्वभाव वाली, प्रचंड अपशब्द बोलने वाली तथा पति के उत्साह को दबा देने वाली होती है – पुरुष की इस प्रकार की भार्या 'मालकिन जैसी भार्या' कहलाती है।]

"या सब्बदा होति हितानुकम्पिनी,
माताव पुत्तं अनुरक्खते पतिं।
ततो धनं सम्भतमस्स रक्खति,
या एवरूपा पुरिसस्स भरिया।
'माता च भरिया'ति च सा पवुच्चति॥"

[जो सदैव हित चाहने वाली होती है, जो पति की इस प्रकार देख-भाल रखती है जैसे माता पुत्र की, जो पति के कमाये हुए धन की रक्षा करती है – पुरुष की इस प्रकार की भार्या 'माता जैसी भार्या' कहलाती है।]

"यथापि जेट्ठा भगिनी कनिट्ठका,
सगारवा होति सकम्हि सामिके।
हिरीमना भत्तुवसानुवत्तिनी,
या एवरूपा पुरिसस्स भरिया।
'भगिनी च भरिया'ति च सा पवुच्चति॥"

[जो छोटी या बड़ी बहन के समान अपने स्वामी के प्रति गौरव का भाव रखती है, लज्जाशील होती है, पति की आज्ञा में रहने वाली होती है – पुरुष की इस प्रकार की भार्या 'बहन जैसी भार्या' कहलाती है।]

"याचीध दिस्वान पतिं पमोदति,
सखी सखारंव चिरस्समागतं।
कोलेय्यका सीलवती पतिब्बता,
या एवरूपा पुरिसस्स भरिया।
'सखी च भरिया'ति च सा पवुच्चति॥"

[जैसे चिरकाल के अनंतर आगत सखा को देखकर कोई सखी प्रसन्न होती है, उसी प्रकार जो कुलीन, शीलवान, पतिव्रता नारी अपने पति को देखकर प्रमुदित होती है – पुरुष की इस प्रकार की भार्या 'सखी जैसी भार्या' कहलाती है।]

"अक्कुद्धसन्ता वधदण्डतज्जिता,
अदुट्ठचित्ता पतिनो तितिक्खति।
अक्कोधना भत्तुवसानुवत्तिनी,
या एवरूपा पुरिसस्स भरिया।
'दासी च भरिया'ति च सा पवुच्चति॥"

[जो मारने-पीटने का डर दिखाये जाने पर भी क्रोधित न होने वाली, शांत रहने वाली, द्वेषरहित चित्त से पति (की हर बात) को सहन करती है, जिसे क्रोध नहीं आता, जो स्वामी के वश में रहने वाली होती है – पुरुष की इस प्रकार की भार्या 'दासी जैसी भार्या' कहलाती है।]

"'याचीध भरिया वधका'ति वुच्चति,
'चोरी च अय्या'ति च या पवुच्चति।
दुस्सीलरूपा फरुसा अनादरा,
कायस्स भेदा निरयं वजन्ति ता॥"

[जो 'वधक जैसी भार्या' कहलाती है, जो 'चोर जैसी भार्या' कहलाती है तथा जो 'मालकिन जैसी भार्या' कहलाती है – ये दुश्शील होती हैं, कठोर स्वभाव की होती हैं, (पति का) आदर न करने वाली होती हैं – ऐसी भार्याएं शरीर छूटने पर नरकगामिनी होती हैं।]

"'याचीध माता भगिनी सखी'ति च,
'दासी च भरिया'ति च सा पवुच्चति।
सीले ठितत्ता चिररत्तसंवुता,
कायस्स भेदा सुगतिं वजन्ति ता"ति॥

– अङ्गुत्तरनिकाय २.७.६३, भरियासुत्त

[जो 'माता जैसी भार्या' कहलाती है, 'बहन जैसी भार्या' कहलाती है, 'सखी जैसी भार्या' कहलाती है, तथा 'दासी जैसी भार्या' कहलाती है – ये शीलवान भार्याएं दीर्घकाल तक संयत जीवन व्यतीत करने के कारण शरीर छूटने पर स्वर्ग-लोक में जन्म ग्रहण करती हैं।]

"सुजाता! आदमी की ये सात प्रकार की भार्याएं होती हैं। उनमें तू कौन-सी है?"

"भंते! आज से भगवान मुझे स्वामी की 'दासी-समान भार्या' जानें।"

दासी पुण्णा का समर्पण

वर्षा ऋतु के चार महीने भिक्षु-संघ सहित भगवान किसी आराम में विहार करते और वर्षा समाप्त होते ही विभिन्न प्रदेशों में चारिका के लिए निकल पड़ते। एक बार वर्षावास का समय प्रारंभ होने से कुछ पहले ही अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम से चारिका के लिए निकल पड़े। कोशलराज पसेनदि, श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक आदि ने शास्ता को बहुत रोकने और लौटा लाने का प्रयास किया पर वे सफल नहीं हो पाये।

श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक दुःखी मन से घर आया। उसके घर पुण्णा नाम की क्रीतदासी थी। उसने श्रेष्ठी से कहा – स्वामी, आप दुःखी हैं?

"हां, शास्ता को लौटा नहीं सका, अब तीन महीने तक धर्म नहीं सुन सकूंगा, न ही यथेष्ट दान दे सकूंगा, इस कारण मन उदास है।"

"'स्वामी', मैं जाकर शास्ता को लौटा सकूंगी।"

"यदि तुम लौटा सको तो मैं तुम्हें दासता से मुक्त कर दूंगा।"

वह गयी और दसबल के पैरों पर लेटकर कहा – "भगवान, आप लौटें।"

"पुण्णे, तुम तो जीविका के लिए दूसरों पर निर्भर रहने वाली हो, तुम मेरा क्या कर सकोगी?"

"भगवान आप तो जानते हैं कि मेरे पास देने को कुछ नहीं है, लेकिन आपके लौट आने से मैं तीन रत्नों की शरण और पांच शीलों में अपने को प्रतिष्ठित कर सकूंगी। भगवान ने कहा – साधु, साधु, साधु पुण्णे! और लौटकर जेतवन चले आये। श्रेष्ठी ने सुना कि पुण्णा द्वारा शास्ता लौटाये गये हैं तो उसको दासता से मुक्त कर बेटी के स्थान पर रखा। वह प्रव्रज्या की याचना कर प्रव्रजित हुई। विपस्सना का अभ्यास आरंभ किया। शास्ता ने उसके द्वारा प्रारंभ किया विपश्यना को देख उसे प्रकाशित करने वाली यह गाथा कही –

"पुण्णे पूरेसि सद्धम्मं, चन्दो पन्नरसो यथा ।
परिपुण्णाय पञ्ञाय, दुक्खस्सन्तं करिस्ससी"ति ।

– मज्झिमनिकाय-अट्ठकथा २.२५२, धम्मगरुभाववण्णना

"पुण्णा ने सद्धर्म को पूर्णिमा के चांद की तरह पूरा किया।
वह प्रज्ञा से परिपूर्ण हो दुःख का अंत करेगी।"

गाथा के अंत में अर्हत्व प्राप्तकर वह प्रसिद्ध श्राविका हुई।

मित्र-धर्म की रक्षा

श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक का काळकण्णि(=मनहूस) नाम का एक लंगोटिया यार था। दोनों ने एक ही आचार्य के पास शिल्प सीखा था। कालक्रम में काळकण्णि की आर्थिक स्थिति काफी बिगड़ गयी। वह मदद के लिए श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक के पास गया। श्रेष्ठी ने उसे आश्वस्त कर, खर्चा दे, उसके परिवार का पालन किया। वह श्रेष्ठी का उपकारी हो, उसके सब कार्य करने लगा। जब वह श्रेष्ठी के पास आता, तो उसे कहा जाता – 'काळकण्णि! खड़ा हो; काळकण्णि! बैठ; काळकण्णि! खा।" एक दिन श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक के मित्रों ने उसके पास आकर कहा – "श्रेष्ठी, इसे अपने पास मत रखें। 'काळकण्णि! खड़ा हो; काळकण्णि! बैठ; काळकण्णि! खा।' इस शब्द (को सुनने) से यक्ष भी भाग जाये। यह तुम्हारे योग्य नहीं। यह दरिद्र है, कुरूप है – तुम्हें इससे क्या?

अनाथपिण्डिक ने उत्तर दिया – "नाम व्यवहार-मात्र है। पण्डित-जन उसका ख्याल नहीं करते। श्रुत-मांगलिक नहीं होना चाहिए। केवल नाम के कारण लंगोटिये यार को नहीं छोड़ सकता।"

उनकी बात न मान, एक दिन वह अपने कर वसूलने के लिए एक ग्राम जाते समय, उसे अपने घर का रखवाला बना कर गया। जब चोरों को पता

चला कि श्रेष्ठी घर में नहीं है तब वे हथियारबंद होकर आये और घर को घेर लिया। चोरों के आने की आशंका से काळकण्णि पहले से ही सजग था। अपने आदमियों को ऐसे पुकारने का नाटक किया जैसे घर में सभी लोग मौजूद हों। 'मनुष्यों को जगा', 'तू शंख बजा', 'तू ढोल बजा', इस प्रकार पूरे घर को शब्दायमान कर दिया। चोरों को लगा कि उन्हें गलत सूचना मिली। घर खाली नहीं है। पकड़े जाने के भय से हड़बड़ी में अपने हथियार भी वहीं पटक कर वे सभी भाग निकले।

अगले दिन लोगों ने घर के आस-पास हथियार देख संविग्नचित्त हो, सोचा, "यदि आज इस प्रकार का बुद्धिमान गृह-रक्षक न होता तो चोर घर में घुस यथारुचि सामान लूट कर ले जाते। इस दृढ़-मित्र के कारण श्रेष्ठी की हानि नहीं हुई, उन्नति हुई।" उसकी प्रशंसा कर, श्रेष्ठी के गांव से वापस लौटने पर, उसे सब वृत्तांत कहा।

श्रेष्ठी ने उन्हें उत्तर दिया – "तुम मेरे ऐसे गृह-रक्षक मित्र को निकलवाते थे। यदि तुम्हारी बात मान, मैंने इसे निकाल दिया होता, तो आज मेरा कुछ भी बाकी न रहता। नाम नहीं चाहिए, हितैषी चित्त ही चाहिए।" यह कह उसे और भी खर्चा दे 'अब मेरे पास यह कहने-योग्य बात है' सोच बुद्ध के पास जाकर आरंभ से लेकर सब हाल कह सुनाया।

बुद्धिमती सुलसा

अनाथपिण्डिक की गृहस्वामिनी पुण्णलक्खणादेवी की सुलसा नाम की एक दासी थी। एक उत्सव के दिन अन्य दासियों के साथ वह भी उद्यान जा रही थी। जाते समय उसने मालकिन से गहने मांगे। मालकिन ने काफी मूल्यवान गहने दासी को पहनने के लिए दे दिये जिन्हें धारण कर वह अन्य दासियों के साथ उत्सव में गयी।

एक चोर उसके गहनों के लालच से यह सोच कि इसे मारकर इसके गहने हथियाऊंगा, उसके साथ बात-चीत करता हुआ उद्यान गया। वहां उसने उसे मत्स्य-मांस सुरा आदि दी। उसने समझा कि आसक्ति के कारण

देता है। उद्यान-क्रीड़ा के बाद जब शाम के समय सभी दासियां विश्राम करने के लिए लेटी थीं, वह उठकर उसके पास गयी। वह बोला – "भद्रे! यह स्थान खुला है। थोड़ा उधर चलें।"

उसने सोचा – "यहां प्रेम क्रीड़ा तो हो सकती है, किंतु यह निःसंदेह मुझे मारकर मेरे गहने लेना चाहता होगा। अच्छा, इसे सबक सिखाऊँगी।" वह बोली – "स्वामी! सुरा-मद से मेरा शरीर सूख रहा है। मुझे पानी पिलावें।" वह उसे एक कुएं पर ले गयी और रस्सी तथा घड़ा दिखाकर बोली, इससे मुझे पानी खींचकर दें। चोर ने कुएं में रस्सी डाली। जब वह झुक कर पानी खींच रहा था, तब उस महाबलशाली दासी ने उसे दोनों हाथ से जोर से धक्का देकर कुएं में गिरा दिया। फिर 'तू इतने से ही नहीं मरेगा', सोच एक बड़ी ईंट ले उसने उसके सिर पर फेंका। वह वहीं मर गया। उसने भी नगर में जा, स्वामिनी के गहने लौटाते हुए, यह सोच कर कि आज इन गहनों के कारण मर ही गई थी, वह सब समाचार सुनाया। उसने अनाथपिण्डिक से कहा। अनाथपिण्डिक ने तथागत से कहा। शास्ता बोले – "गृहपति! न केवल अभी यह दासी स्थानोचित-प्रज्ञा से युक्त है, पहले भी रही है। न केवल अभी उसने उसे मारा है, पहले भी मारा है।"

ऐसे हुआ देवता

हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों से तपस्वी लोग चार माह वर्षावास के लिए नगर में आते। एक बार आते समय वे वनप्रदेश में एक बड़े वृक्ष के नीचे विश्राम के लिए रुक गये। उनमें से एक तापस ने पेयपदार्थ, भोजन इत्यादि के बारे में बारी-बारी से वृक्षदेवता से मनोकामना की। उन्हें शीघ्र ही उनकी इच्छित वस्तुएं प्राप्त हुईं। तापस ने वृक्षदेवता की महानता का चिंतन करते हुए उसके दर्शन-लाभ की मनोकामना की। वृक्षदेवता वृक्षस्कंध को फाड़कर प्रकट हुआ।

तापसों ने कहा – 'देवराज, बड़ी है तेरी संपत्ति, क्या करके तुमने यह संपत्ति प्राप्त की?' लज्जा के कारण वह अपने छोटे-से काम को बताने का

साहस नहीं कर पाता था, पर तापसों द्वारा बार-बार पूछे जाने पर उसने अपने पूर्व-जन्म की बात बतायी।

वह एक गरीब आदमी होकर मजदूरी खोजता हुआ अनाथपिण्डिक के पास मजदूरी पाकर उसके आश्रय में जीवन बिताता था। उपोसथ (हर अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा को मनाया जाने वाला व्रत) के दिन अनाथपिण्डिक ने विहार से आकर पूछा –

"क्या उस मजदूर को आज उपोसथ के बारे में कहा गया है?"

"नहीं कहा गया है।"

"तो, उसके लिए रात के भोजन की व्यवस्था करना।"

पूरा दिन जंगल में काम करने के बाद जब वह मजदूर शाम को लौटा तब बड़ा ही भूखा था। फिर भी, भोजन सामने आने पर उसने तुरंत खाना शुरू नहीं किया। उसने देख लिया था कि भोजन के समय घर में लोगों की आवाजाही लगी रहती थी। भात दो, सूप दो, सब्जी दो इत्यादि, कोलाहल मचा रहता था। पर आज ऐसा कुछ भी नहीं है। सभी लोग चुपचाप सोये हैं। केवल उस मजदूर को ही भोजन दिया गया है। आखिर बात क्या है? ऐसा सोच कर उसने पूछा – "क्या सब लोगों ने खाना खा लिया है? सिर्फ मैं ही बचा हूं?" उन्होंने नहीं खाया। कारण पूछे जाने पर कहा कि "इस घर में उपोसथ के दिनों में रात में कोई नहीं खाता है। सब उपोसथ का आचरण करते हैं। दूध पीने वाले बच्चों को भी विकाल में चतुमधुर मुंह में डाल कर महाश्रेष्ठी उपोसथ करवाता है। तुझे उपोसथ के बारे में कहना भूल गये थे। इसलिए तेरे ही लिए भात पका है। इसे खा लो।"

मजदूर ने पूछा – "अगर अब भी उपोसथ करना संभव हो तो मैं करूंगा।"

"यह तो केवल श्रेष्ठी ही बता सकते हैं, उनसे पूछना होगा।"

श्रेष्ठी ने कहा – "अब से बिना खाये, मुँह धोकर उपोसथ के नियमों का दृढ़ता से आचरण करना होगा। यह आधा उपोसथ कर्म माना जायगा।" मजदूर ने ऐसा ही किया।

दिन भर काम करने के कारण भूखे उस मजदूर के शरीर में पीड़ा होने लगी और वह कांपने लगा। वह रस्सी से छाती बाँध कर रस्सी का अंत पकड़ कर उसे ऐंठने लगा। श्रेष्ठी ने समाचार सुन मशाल के प्रकाश में चतुमधुर मंगवा कर उसके पास जाकर उसकी बीमारी सुनकर कहा –

"उठ कर यह दवाई खा।"

"क्या आप खाते हैं?"

"हम अस्वस्थ नहीं हैं। तू खा।"

"स्वामी, मैं पूरा उपोसथ नहीं कर सका। आधा उपोसथ भी दोषयुक्त न हो।" बोलकर दवाई नहीं खायी।

सुबह होते-होते उसका शरीर छूट गया। वह श्रेष्ठी बुद्ध, धर्म और संघ के प्रति श्रद्धालु था। उसके आश्रय में रहकर उपोसथ का आचरण करने के फलस्वरूप उस मजदूर को मृत्यु के बाद यह संपत्ति प्राप्त हुई।

स्थविर दासक

सावत्थी के एक कुल में दासक का जन्म हुआ। वह अनाथपिण्डिक गृहपति द्वारा विहार की देखभाल के लिए नियुक्त किया गया। यहीं से दासक के पूर्वजन्मों के पुण्य उदय होने शुरू हुए। अपने पूर्वजन्मों में वह दो बार बुद्धों के संपर्क में आ चुका था। एक बार अजित नामक प्रत्येकबुद्ध को श्रद्धायुक्त मन से आम्रफल दान दिया था और दूसरी बार भगवान कस्सप के शासनकाल में अनेक कुशल-कर्मों द्वारा प्रभूत पुण्य अर्जित किया था। श्रेष्ठी द्वारा सौंपा गया काम उसके लिए बड़ा ही कल्याणकारी सिद्ध हुआ। विहार की देख-रेख करते हुए वह भगवान बुद्ध के दर्शन करता और धर्म-श्रवण करता। इस प्रकार उसके मन में बुद्ध तथा धर्म के प्रति श्रद्धा जागी। महाश्रेष्ठी ने उसके शील-सदाचार तथा इरादे को जानकर उसे

दासत्व से मुक्त कर कहा – 'इच्छानुसार प्रव्रजित हो।' भिक्षुओं ने उसे प्रव्रजित किया।

जब से वह प्रव्रजित हुआ, वह आलस करने लगा । न अपने कर्तव्य का बोध, न ही सेवा का, न साधना में बैठना, न धर्म-श्रवण करना। श्रमण धर्माचरण के प्रति उसकी एकदम अरुचि एवं विरक्ति थी। वह खूब खा-पीकर सोता ही रहता था। धर्म-श्रवण के समय में भी एक कोने में जाकर सभा के अंत में बैठकर खर्राटे भरता हुआ सोया ही रहता था। भगवान ने उसके पूर्वजन्म के लक्षणों को देखकर उसे संविग्न करने के लिए यह गाथा कही –

"मिद्धी यदा होति महग्घसो च, निद्दायिता सम्परिवत्तसायी।
महावराहोव निवापपुट्ठो, पुनप्पुनं गब्भमुपेति मन्दो।"

– थेरगाथा १७, दासकत्थेरगाथा

["जो निद्राशीली और पेटू होकर, भोजन खाकर बड़े सूअर की तरह सोता हुआ लुढ़कता रहता है, वह बुद्धिहीन बार-बार जन्म लेता है।"]

उसे सुनकर दासक थेर ने संविग्न होकर विपस्सना में प्रतिष्ठित होकर शीघ्र ही अर्हत्व का साक्षात्कार किया।

रत्न माने त्रिरत्न

श्रेष्ठी सुदत्त का उदार और दानी होने का गुण तब पराकाष्ठा को पहुँचा जब उसने शीतवन में शास्ता के सम्मुख त्रिरत्न की शरण ग्रहण की। उसके बाद से अनाथपिण्डिक का दान और त्याग निःसीम-सा हो गया। अपार धन-संपत्ति, सोना-चाँदी रखने वाले महाश्रेष्ठी के लिए त्रिरत्न जैसे कोई रत्न नहीं दीख पड़े। जब और जहां किसी रत्न की बात चलती तब उसे वह त्रिरत्न ही समझता। जिस सोतापत्ति अवस्था का फल उसने स्वयं चखा उस अवस्था को दूसरों को प्राप्त करवाने के लिए वह अपनी धन-संपदा का मुक्त-हस्त से दान देता रहा। उसके इस त्याग के कारण ही भगवान ने उसे दाताओं में अग्र घोषित किया।

अपने किसी पूर्वजन्म में अनाथपिण्डिक ने भगवान पदुमुत्तर के समय हंसवती नगरी में जन्म लिया था। धर्मकथा सुनते समय उसने देखा कि भगवान ने एक उपासक को दाताओं में 'अग्र' की उपाधि दी। बाद में भगवान के प्रति अपना कर्तव्य करते हुए उसने भी मन-ही-मन उसी स्थान के लिए इच्छा की थी।

भोजन-दान में स्नेह-विश्वास

श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक के घर पाँच सौ भिक्षुओं का नित्यप्रति का भोजन निश्चित था। उसका घर क्या था भिक्षुओं की इच्छा-पूर्ति का स्रोत था। नित्य काषाय वस्त्र से प्रज्वलित रहता और ऋषियों को छू-छू कर हवा बहती रहती।

एक दिन राजा ने नगर की प्रदक्षिणा करते समय श्रेष्ठी के घर भिक्षु-संघ को देख कर सोचा – मैं भी आर्य-संघ को नित्य भोजन कराऊँगा। उसने विहार जा, शास्ता को प्रणाम कर पाँच सौ भिक्षुओं को नित्य भोजन दिया जाना निश्चित किया। उस समय से राजा के महल में नित्य भिक्षा दी

जाने लगी। तीन वर्ष के पुराने सुगंधित शाली धान का भात होता, भिक्षु विश्वास से, स्नेह से अपने हाथ से परोसने वाले न थे। राजा के कर्मचारी और नौकर-चाकर जैसे-तैसे भोजन परोसकर भार उतारते। भिक्षु बैठकर खाना नहीं चाहते थे। नाना प्रकार के श्रेष्ठ भोजन ले, अपने-अपने विश्वस्त उपस्थाकों, गृहस्थ उपासकों के घर चले जाते। राजा का भोजन उन्हें देकर और उनका दिया हुआ रूखा-सूखा, जैसा मिलता वैसा भोजन करते। एक दिन राजा के लिए बहुत से फल लाये गये। श्रद्धावश राजा ने उन फलों को भिक्षुओं को देने के लिए कहा। राजसेवकों ने दानशाला में पहुँच कर एक भिक्षु को भी नहीं देखा। उन्होंने राजा से कहा – एक भिक्षु भी नहीं है।

"अभी तो समय है न?"

"हाँ, समय है। लेकिन भिक्षु आपके यहां से भोजन ले जाकर अपने विश्वस्त सेवकों (उपस्थाकों) के घरों पर जा, वह भोजन उन्हें दे और उनका दिया हुआ रूखा-सूखा अथवा श्रेष्ठ जैसा मिले वैसा भोजन ग्रहण करते हैं।"

राजा ने सोचा – हमारा भोजन बढ़िया होता है। किस कारण से उसे न ग्रहण कर दूसरा ग्रहण करते हैं? शास्ता से पूछूँगा। उसने विहार जाकर शास्ता को प्रणाम करके पूछा।

शास्ता ने उत्तर दिया – महाराज, भोजन में विश्वास ही बड़ी चीज है। तुम्हारे घर विश्वास उत्पन्न कर, स्नेहपूर्वक भिक्षा देने वालों के न होने से भिक्षु भोजन ले जाकर अपनी-अपनी विश्वस्त जगह पर खाते हैं। महाराज, विश्वास के समान दूसरा रस नहीं है। अविश्वासी का दिया हुआ चार प्रकार का मधुर-रस विश्वासी के दिए हुए मट्ठे की भी बराबरी नहीं करता। पुराने समय के पंडितों ने रोग उत्पन्न होने पर राजा द्वारा पाँच वैद्यकुलों की औषधि कराने पर भी स्वस्थ न हो, विश्वस्त जनों के पास जा बिना नमक का सामाक-नीवार तथा यवागु और बिना नमक के ही पानी में उबाले पत्ते खाकर स्वास्थ्य लाभ किया है।

वस्तु नहीं, भाव प्रमुख

भगवान गोतम बुद्ध के जेतवन में विहार करते समय अनाथपिण्डिक प्रतिदिन तीन बार भगवान के दर्शन के लिए जाया करता। जाते समय 'क्या लेकर आया है?' ऐसा बाल-श्रामणेर हाथ की ओर देखेंगे, सोच कर वह कभी खाली हाथ नहीं जाया करता था। सुबह जाते हुए यवागु (पतली खिचड़ी) लिवा कर ही जाया करता, नाश्ते के बाद घी, मक्खन, मधु, गुड़, दवाई इत्यादि और शाम को माला, सुगंध, विलेपन, वस्त्र इत्यादि लिवा कर जाया करता था। इस तरह हमेशा हर दिन दान देकर शील-पालन करता था। कुछ समय बाद उसका धन क्षीण हो गया। उपजीवी व्यापारियों ने उससे अट्ठारह करोड़ धन उधार लिया था। नदी के किनारे निधिरूप में रखा हुआ अट्ठारह करोड़ का सोना महासमुद्र में चला गया। ऐसी हालत में भी भिक्षु-संघ को दान देना नहीं रुका। अब श्रेष्ठी पहले जैसा उत्तम कोटि का भोजन नहीं दे पाता था।

एक दिन जेतवन में एक ओर बैठे अनाथपिण्डिक गृहपति से भगवान ने पूछा –

"गृहपति! (सामान्य जनों को) दान दिया जाता है?"

"भंते! मेरे कुल से (सामान्य याचक आदि को) दान दिया जाता है, लेकिन वह टूटे चावल का भात और मट्ठा होता है।"

"गृहपति! 'रूखा दान देता हूं' ऐसा मत सोचो। श्रेष्ठचित्त से बुद्धों को दिया गया दान रूखा नहीं होता है।

"गृहपति! दान चाहे रूखा हो, चाहे बढ़िया हो, यदि वह लापरवाही से दिया जाता है, बेमन से दिया जाता है, अपने हाथ से नहीं दिया जाता, नियमपूर्वक नहीं दिया जाता तथा दान-कर्म के फल में विश्वास रख कर नहीं दिया जाता तो जहां-जहां भी उस दान-कर्म का फल मिलता है, तब वहां बढ़िया भोजन की ओर मन नहीं झुकता है, बढ़िया वस्त्र की ओर मन नहीं झुकता है, बढ़िया सवारी की ओर मन नहीं झुकता है तथा न पांचों इंद्रियों

के बढ़िया भोगों की ओर मन झुकता है। उसके पुत्र, स्त्री, दास, नौकर-चाकर उसकी बात नहीं सुनते, उसकी ओर ध्यान नहीं देते तथा उसकी आज्ञा नहीं मानते।"

"ऐसा क्यों?"

"गृहपति! जो काम लापरवाही से किये जाते हैं उनका कर्म-फल ऐसा ही होता है।

"गृहपति! दान चाहे रूखा हो, बढ़िया हो, यदि लापरवाही से, बेमन से नहीं दिया जाता, अपने हाथ से नियमपूर्वक, दान-कर्म के फल में विश्वास रख कर दिया जाता है तो जहां-जहां भी उस कर्म का फल मिलता है, वहां बढ़िया भोजन, बढ़िया वस्त्र, बढ़िया सवारी की ओर मन झुकता है तथा पाँचों इंद्रियों के बढ़िया भोगों की ओर झुकता है। उसके पुत्र, स्त्री, दास, नौकर-चाकर उसकी बात सुनते हैं, उसके कथन पर ध्यान देते हैं तथा उसकी आज्ञा मानते हैं।"

"ऐसा क्यों?"

"गृहपति! जो काम लापरवाही से नहीं किये जाते, उनका कर्म-फल ऐसा ही होता है।

"गृहपति! पूर्व समय में वेलाम नाम का एक ब्राह्मण था। उसने बहुत प्रकार का ऐसा महान दान दिया जिसकी कल्पना करना भी सहज नहीं। जैसे – चाँदीभरे चौरासी हजार सोने के थाल दिये, सोनाभरे चौरासी हजार चाँदी के थाल दिये, हिरण्यभरे चौरासी हजार काँसे के थाल दिये, स्वर्णालंकारों को धारण किये स्वर्णमय ध्वजाओं सहित, स्वर्णिम आस्तरणों से आच्छादित चौरासी हजार हाथी दिये इत्यादि, इत्यादि।

"हो सकता है कि गृहपति तेरी यह धारणा हो कि उस समय कोई दूसरा ही वेलाम ब्राह्मण हुआ होगा और उसी ने वह महादान दिया। गृहपति! ऐसा नहीं समझना चाहिए। मैं ही उस समय वेलाम ब्राह्मण था। मैंने ही वह महादान दिया। गृहपति! उस दान के दिये जाने के समय कोई दक्षिणार्ह नहीं था, इसलिए उस समय कोई दान ग्रहण करने वाले की पात्रता की ओर ध्यान नहीं देता था।

"हे गृहपति! वेलाम ब्राह्मण ने जो महादान दिया था, उस दान के फल से उस भोजन-दान का फल अधिक है, जो एक सम्यकदृष्टि-प्राप्त को दिया जाता है।

"जो सौ सम्यकदृष्टि-प्राप्तों को भोजन कराता है, उससे एक सकदागामी को भोजन कराने का फल अधिक है।

"जो सौ सकदागामियों को भोजन कराता है, उससे एक अनागामी को भोजन कराने का फल अधिक है।

"जो सौ अनागामियों को भोजन कराता है, उससे एक अर्हत को भोजन कराने का फल अधिक है।

"जो सौ अर्हतों को भोजन कराता है, उससे एक प्रत्येकबुद्ध को भोजन कराने का फल अधिक है।

"जो सौ प्रत्येकबुद्धों को भोजन कराता है, उससे तथागत अर्हत सम्यक-संबुद्ध को भोजन कराने का फल अधिक है।

"जो तथागत सम्यक-संबुद्ध को भोजन कराता है, उससे बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को भोजन कराने का फल अधिक है।

"जो बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को भोजन कराने का फल है, उसकी अपेक्षा जो चारों दिशाओं के वर्तमान तथा भविष्य में आने वाले संघ के लिए विहार बनवाये, उसका फल अधिक है।

"जो चारों दिशाओं के वर्तमान तथा भावी संघ के लिए विहार बनवाये, उससे कहीं अधिक जो प्रसन्न मन से बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरण ग्रहण करे, उसका फल अधिक है।

"जो प्रसन्न मन से बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरण ग्रहण करे, उसके उस कुशल-कर्म से, जो प्राणातिपात (हिंसा) से विरत रहने, चोरी से विरत रहने, कामभोग-संबंधी मिथ्याचार से विरत रहने, झूठ से विरत रहने, शराब आदि

नशीली चीजों के सेवन से विरत रहने के शीलों को ग्रहण करता है, उसका फल अधिक है तथा उससे भी अधिक फल है अल्प समय तक मैत्री-भावना करने का।

"इससे भी अधिक फल है चुटकी बजाने भर के समय तक भी अनित्य-संज्ञा का अभ्यास करने का।"

– अङ्गुत्तरनिकाय ३.९.२०, वेलामसुत्त

अनुपम श्रद्धा

महाश्रेष्ठी अनाथपिण्डिक के घर भगवान आते, अस्सी महास्थविर आते और भोजन के लिए आने वाले भिक्षुओं की संख्या की तो गणना ही नहीं रहती। उसका घर सात मंजिलों वाला था। घर की चौथी मंजिल पर एक मिथ्यादृष्टिक देवी रहती थी। सम्यक-संबुद्ध के घर में प्रवेश करते समय वह अपने कोठे पर बैठी न रह सकती थी। अस्सी महास्थविर तथा अन्य स्थविरों के भी प्रविष्ट होते तथा निकलते समय उनके अभिवादन हेतु बच्चों के साथ उसे नीचे आना पड़ता था। उसने सोचा, जब तक श्रमण गोतम अथवा उसके श्रावक इस घर में आते-जाते रहेंगे, तब तक मुझे सुख नहीं। मैं नित्य-प्रति उतर-उतर कर जमीन पर नहीं खड़ी हो सकती, सो मुझे ऐसा करना चाहिए जिससे ये लोग इस घर में प्रवेश ही न करें।

एक दिन वह श्रेष्ठी के महाकर्मचारी के पास गयी। महाकर्मचारी के पूछने पर उसने अपना परिचय दिया। महाकर्मचारी ने उसके आने का कारण पूछा। देवी ने कहा – "क्या तुम श्रेष्ठी की करनी को नहीं देखते? वह अपने भविष्य का कुछ भी ख्याल न कर, धन ले जाकर, केवल श्रमण गोतम की पूजा करता है। धन को न व्यापार में लगाता है, न कर्मांत(=खेती) में। तुम श्रेष्ठी को समझाओ जिससे वह अपने काम में लगे; श्रावकों-सहित श्रमण गोतम इस घर में प्रवेश न किया करे।"

उस महाकर्मचारी ने उत्तर दिया – "मूर्ख देवी! श्रेष्ठी जो धन खर्च करता है, वह कल्याणकारी बुद्धशासन के लिए करता है। यदि वह मेरी चोटी पकड़ कर मुझे बेच भी देगा, तो भी मैं कुछ न कहूँगा। तू चली जा।"

इसी तरह एक दिन उसने श्रेष्ठी-पुत्र को जाकर उपदेश दिया। श्रेष्ठी-पुत्र ने भी उसे पूर्वोक्त प्रकार से झाड़ लगायी। श्रेष्ठी को तो वह जाकर कुछ कह नहीं सकती थी।

श्रेष्ठी के निरंतर दान देते रहने से, व्यापार न करने के कारण आमदनी कम हो जाने से धन में बहुत कमी आ गयी। उसके दरिद्र हो जाने पर, उसके पहनने के वस्त्र, बिस्तर, भोजन आदि भी पूर्व-सदृश नहीं रहे।

यद्यपि वह देवी पहले श्रेष्ठी के साथ बात भी न कर सकती थी, अब श्रेष्ठी के दुर्गति प्राप्त होने से, 'शायद वह मेरी बात मान ले', सोच आधी रात के समय श्रेष्ठी के शयनागार में प्रविष्ट हुई।

श्रेष्ठी ने उसे देख कर पूछा – "यह कौन है?"

"श्रेष्ठी! मैं चौथी ड्योढ़ी में रहने वाली देवी।"

"किसलिए आयी है?"

"तुझे नेक-सलाह देने की इच्छा से।"

"अच्छा! तो कह।"

"श्रेष्ठी! तू भविष्य की चिंता नहीं करता। बेटे-बेटी की ओर नहीं देखता। तूने श्रमण गोतम के शासन के लिए बहुत धन खर्च कर दिया। सो, तू चिरकाल तक धन खर्च करते रहने से तथा (खेती आदि) नवीन कर्मांतों के न करने से, श्रमण गोतम के कारण निर्धन हो गया है। ऐसा होने पर भी तू श्रमण गोतम का पीछा नहीं छोड़ता। आज भी श्रमण तेरे घर में आते ही हैं। जो कुछ वह ले गये सो अब वापस नहीं मँगवाया जा सकता; वह ले जायँ। लेकिन अब से, तू श्रमण गोतम के पास जाना, और उसके श्रावकों को, इस घर में आने देना बंद कर दे। (चलते-चलते जरा) रुक कर भी

श्रमण गोतम को बिना देखे, अपने व्यापार और वाणिज्य को करते हुए, अपने कुटुंब को पाल।"

श्रेष्ठी ने उससे पूछा – "जो नेक-सलाह तू मुझे देना चाहती है, वह यही है?"

"हां! यही है।"

श्रेष्ठी ने कहा – "तुझ जैसे सौ हजार और लाख देवी-देवताओं के उपदेश से भी मैं हिलने वाला नहीं। दशबल के प्रति मेरी श्रद्धा सुमेरु पर्वत की तरह अचल है, सुप्रतिष्ठित है। मैंने कल्याणकारी त्रिरत्न-शासन के लिए जो धन खर्च किया है उसे तूने 'अनुचित' कहा। तूने बुद्धशासन को दोष दिया। इस प्रकार की अनाचारिणी, दुश्शीला और मनहूस के साथ मैं एक घर में नहीं रह सकता। निकल जा मेरे घर से, शीघ्र निकल और किसी दूसरी जगह चली जा।"

सोतापन्न आर्य-श्रावक अनाथपिण्डिक की बात सुन कर वह अपने निवास-स्थान पर गयी और अपने बच्चों को लेकर घर से बाहर निकल गयी।

श्रेष्ठी की श्रेष्ठता

श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक द्वारा घर से निकाल दिये जाने पर वह देवी कहीं भी निवास-स्थान न पा सकी। 'श्रेष्ठी से क्षमा माँग, वहीं रहूँगी' सोच नगर-रक्षक देवपुत्र के पास जा, उसे प्रणाम कर खड़ी हुई।

'किसलिए आयी?' पूछने पर बोली – "स्वामी! मैंने बिना सोचे-समझे श्रेष्ठी को कुछ कह दिया। उसने क्रुद्ध हो, मुझे निवास-स्थान से निकाल दिया। आप श्रेष्ठी के पास चलकर मेरे अपराध को क्षमा करा कर मुझे रहने के लिए स्थान दिला दें।"

"तूने अनुचित किया जो बुद्धशासन की निंदा की। मैं भी तेरे पक्ष में श्रेष्ठी के साथ बातचीत तो नहीं कर सकता; लेकिन एक ऐसा उपाय बताता हूं कि जिससे श्रेष्ठी क्षमा कर दे।"

"अच्छा! देव कहें।"

"श्रेष्ठी के मित्रों और छोटे व्यापारियों ने उससे अट्ठारह करोड़ धन उधार लिया है। तू श्रेष्ठी के मुनीम का वेश बनाकर उन आलेखों के साथ उन व्यापारियों के पास जा और अपने यक्षबल का उपयोग करते हुए वह धन वसूल कर ले आ। और श्रेष्ठी के खाली खजाने को भर। दूसरा, अचिरवती नदी के किनारे गड़ा धन, नदी-कूल के टूट जाने से समुद्र में बह गया है, उसे भी अपनी सामर्थ्य से लाकर खाली खजाने को भर। और भी, अमुक स्थान पर बिना मलकीयत का अट्ठारह करोड़ धन है, उसे भी लाकर खाली खजाने को भर। इस चौवन करोड़ धन से इस खाली खजाने को भरने से दंड-कर्म करके महाश्रेष्ठी से क्षमा माँगना।"

वह 'देव! अच्छा' कह, उसके कथन को स्वीकार कर, तदनुसार सब धन लाकर, आधी रात के समय श्रेष्ठी के शयनागार में प्रविष्ट हुई। श्रेष्ठी से अपने अपराध के लिए क्षमा माँगी तथा श्रेष्ठी के इधर-उधर पड़े हुए धन से खजाने को भरने की बात बतायी।

अनाथपिण्डिक ने, उसकी बात सुन, यह कहती है 'मैंने दंड भुगत लिया, और अपने दोष को स्वीकार करती हूं' सोच विचार किया कि इसे सम्यक-संबुद्ध के पास ले जाना चाहिए; इसका ख्याल कर तथागत इसे अपने गुणों को जनायेंगे। सो श्रेष्ठी ने उससे कहा – 'देवी! यदि तू मुझ से क्षमा प्रार्थना करना चाहती है, तो शास्ता के सम्मुख क्षमा-प्रार्थना करना।'

प्रातःकाल देवी को लेकर अनाथपिण्डिक शास्ता के पास गया। देवी ने जो कुछ कहा और किया था वह सब श्रेष्ठी ने भगवान से कह सुनाया। तब शास्ता ने दो गाथाओं को कहा –

पापोपि पस्सति भद्रं, याव पापं न पच्चति।
यदा च पच्चति पापं, अथ पापो पापानि पस्सति॥

भद्रोपि पस्सति पापं, याव भद्रं न पच्चति।
यदा च पच्चति भद्रं, अथ भद्रो भद्रानि पस्सति॥

– धम्मपद ११९, १२०, पापवग्ग

[जब तक पाप-कर्म करने वाले का पाप पकता नहीं है, तब तक वह सुख भोगता है, लेकिन जब उसका पाप-कर्म पकता है (=फल देता है), तब से वह दुःख ही दुःख भोगता है। इसी प्रकार जब तक पुण्य-कर्म करने वाले का पुण्य पकता नहीं, तब तक वह दुःख भोगता है, लेकिन जब उसका पुण्य-कर्म पकता है, तब से वह सुख ही सुख भोगता है।]

इन गाथाओं के अंत में, वह देवी सोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुई। उसने शास्ता के चरणों में गिरकर कहा – 'भंते! मैंने राग में अनुरक्त होकर, द्वेष से दूषित हो, मोह से मूढ़ित हो, अविद्या से अंधी हो, आपके गुणों को न जानने के कारण अपशब्दों का प्रयोग किया, सो मुझे क्षमा करें।' शास्ता से क्षमा माँग, उसने श्रेष्ठी से क्षमा माँगी।

गृहस्थ-धर्म

भगवान बुद्ध के शिष्यों में भिक्षुओं की तुलना में गृहस्थों की संख्या कई गुना अधिक थी। श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक भगवान का गृहस्थ शिष्य था। जेतवनाराम में जब वह भगवान के दर्शन और सेवा के लिए जाता तब शास्ता उसे गृहस्थ-धर्म का मर्म समझाते। उनका पालन करने के लिए प्रेरित करते हुए उनके प्रति प्रमाद से सचेत करते। वे उपदेश लोक-परलोक दोनों के लिए उपयोगी होते।

सन्मार्गी गृहस्थ

एक बार अनाथपिण्डिक गृहपति को भगवान ने यह कहा –

"गृहपति! जिस गृहस्थ में ये चार बातें होती हैं वह गृहस्थ सन्मार्गगामी, होता है, यश का भागी होता है, स्वर्गाभिमुख होता है।"

"कौन-सी चार बातें?"

"गृहपति! वह आर्य-श्रावक चीवर (दान) से भिक्षु-संघ की सेवा करता है;

"पिंडपात से भिक्षु-संघ की सेवा करता है;

"शयनासन से भिक्षु-संघ की सेवा करता है;

"रोगी की आवश्यकताओं से भिक्षु-संघ की सेवा करता है। इन चारों बात से युक्त गृहस्थ सन्मार्गगामी होता है, यश का भागी होता है, स्वर्गाभिमुख होता है।"

गिहिसामीचिपटिपदं, पटिपज्जन्ति पण्डिता।
सम्मग्गते सीलवन्ते, चीवरेन उपट्ठिता॥
पिण्डपातसयनेन, गिलानप्पच्चयेन च।
तेसं दिवा च रत्तो च, सदा पुञ्ञं पवड्ढति।
सग्गञ्च कमतिट्ठानं, कम्मं कत्वान भद्दकं॥

– अङ्गुत्तरनिकाय १.४.६०, गिहिसामीचिसुत्त

[पंडित(-जन) सन्मार्गगामी, सदाचारी भिक्षुओं की चीवर, पिंडपात, शयनासन तथा रोगी की आवश्यकताओं से सेवा करता है। ऐसा करने वालों का पुण्य रात-दिन बढ़ता रहता है। शुभ करके वे स्वर्ग-लोक को प्राप्त होते हैं।]

गृहस्थ के सुख

एक बार अनाथपिण्डिक गृहपति भगवान के पास गया; पास जाकर भगवान को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए अनाथपिण्डिक गृहपति को भगवान ने कहा –

"गृहपति! ये चार सुख हैं जो गृहस्थ कामभोगी को समय-समय पर प्राप्त होते हैं।"

"कौन-से चार?"

"भोग्य-पदार्थों के होने का सुख, भोग्य-पदार्थों को भोगने का सुख, ऋणी न होने का सुख तथा निर्दोष होने का सुख।

"गृहपति! (भोग्य-पदार्थों के) होने का सुख कौन-सा होता है?

"गृहपति! किसी कुल-पुत्र के घर में ऐसे भोग्य-पदार्थ होते हैं जो उसके उत्साह और प्रयत्न से कमाये होते हैं, बाहुबल से कमाये होते हैं, पसीने से कमाये होते हैं, तथा धर्मानुसार कमाये होते हैं। उसे उस बात का सुख होता है, आनंद होता है कि उसके पास भोग्य-पदार्थ हैं जिन्हें उसने उत्साह, प्रयत्न, बाहुबल से कमाया होता है, पसीने से कमाया होता है तथा धर्मानुसार कमाया होता है।

"गृहपति! (भोग्य-पदार्थों के) भोगने का सुख कौन-सा होता है?

"गृहपति! एक कुल-पुत्र ऐसे भोग्य-पदार्थों को भोगता है जिन्हें उसने उत्साह और प्रयत्न से, बाहुबल से, पसीने से, तथा धर्मानुसार कमाया होता है और वह उनसे पुण्य-कर्म करता है। वह ऐसे कमाये हुए भोग्य-पदार्थों को जब भोगता है और उनसे पुण्य करता है तो उसे इससे सुख प्राप्त होता है,

उसे इससे आनंद प्राप्त होता है। गृहपति! यही (भोग्य-पदार्थों) के भोगने का सुख है।

"गृहपति! ऋणी न होने का सुख कौन-सा होता है?

"गृहपति! एक कुल-पुत्र को किसी का कुछ नहीं देना होता, न थोड़ा और न अधिक। उसे यह सोच कि मुझे किसी को कुछ नहीं देना है, थोड़ा या अधिक सुख प्राप्त करता है, आनंद प्राप्त करता है। गृहपति! यही ऋणी न होने का सुख है।

"गृहपति! निर्दोष होने का सुख कौन-सा होता है?

"गृहपति! एक कुल-पुत्र निर्दोष कायकर्म से युक्त होता है, निर्दोष वाणी के कर्म से युक्त होता है, निर्दोष मन के कर्म से युक्त होता है। उसे यह सोचकर कि मैं निर्दोष काय-कर्म से युक्त हूं, निर्दोष वाणी के कर्म से युक्त हूं, निर्दोष मन के कर्म से युक्त हूं, सुख प्राप्त होता है, आनंद प्राप्त होता है। गृहपति! यही निर्दोष होने का सुख है।

"गृहपति! ये चार सुख हैं, जो किसी भी कामभोगी गृहस्थ को समय-समय पर प्राप्त होने चाहिए।"

– अङ्गुत्तरनिकाय १.४.६२, आनण्यसुत

चार प्रकार की संपत्ति

दूसरी बार अनाथपिण्डिक गृहपति को संबोधित करते हुए भगवान ने कहा –

"महाश्रेष्ठी! इस संसार में चार बातें ऐसी हैं जो इष्ट हैं, मनोरम हैं, अच्छी लगने वाली हैं। किंतु दुनिया में दुर्लभ हैं। ये चार बातें हैं –

"धर्मानुसार मुझे योग्य-वस्तुओं की प्राप्ति हो, यह पहली बात है जो इष्ट है, मनोरम है, अच्छी लगने वाली है किंतु दुनिया में दुर्लभ है।

"भोग्य-वस्तुओं की प्राप्ति होने पर धर्मानुसार अपने संबंधियों तथा उपाध्यायों सहित मैं यशस्वी होऊं, यह दूसरी बात है जो इष्ट है, मनोरम है, अच्छी लगने वाली है किंतु दुनिया में दुर्लभ है।

"भोग्य-वस्तुओं की प्राप्ति होने पर धर्मानुसार अपने संबंधियों तथा उपाध्यायों सहित यशस्वी होने पर चिरकाल तक जीता रहूं, लंबी आयु हो, यह तीसरी बात है जो इष्ट है, मनोरम है, अच्छी लगने वाली है किंतु दुनिया में दुर्लभ है।

"भोग्य-वस्तुओं की प्राप्ति होने पर धर्मानुसार यशस्वी होने पर, शरीर छूटने पर, मरने के अनंतर सुगति को प्राप्त होऊं, स्वर्गलोक में उत्पन्न होऊं; यह चौथी बात है जो इष्ट है, मनोरम है, अच्छी लगने वाली है किंतु दुनिया में दुर्लभ है।

"गृहपति! ये जो चारों बातें इष्ट हैं, मनोरम हैं, अच्छी लगने वाली हैं किंतु दुनिया में दुर्लभ हैं, इन चारों की प्राप्ति के चार साधन हैं।"

'कौन-से चार?'

"श्रद्धा-संपत्ति, शील-संपत्ति, त्याग-संपत्ति तथा प्रज्ञा-संपत्ति।"

"गृहपति! श्रद्धा-संपत्ति किसे कहते हैं?

"हे गृहपति! आर्य-श्रावक श्रद्धावान होता है, तथागत की बोधि (प्राप्ति) में श्रद्धा रखता है – 'ऐसे ही तो हैं वे भगवान अरहंत, सम्यक-संबुद्ध, विद्या तथा सदाचरण से संपन्न, उत्तम गति प्राप्त, समस्त लोकों के ज्ञाता, सर्वश्रेष्ठ, (पथ-भ्रष्ट घोड़ों की तरह) भटके लोगों को सही मार्ग पर ले आने वाले सारथी, देवताओं और मनुष्यों के शास्ता (आचार्य), बुद्ध, भगवान। गृहपति! यह श्रद्धा-संपत्ति कहलाती है।

"गृहपति! शील-संपत्ति किसे कहते हैं?

"गृहपति! आर्य-श्रावक प्राणी-हिंसा, चोरी, व्यभिचार, मिथ्या-वचन, शराब, मदिरा आदि नशे तथा प्रमादकारी वस्तुओं के सेवन से विरत रहता है। गृहपति! यह शील-संपत्ति कहलाती है।

"गृहपति! त्याग-संपत्ति किसे कहते है?

"गृहपति! आर्य-श्रावक मात्सर्य (कृपणता) रहित चित्त से युक्त हो गृहवास करता है, त्यागी, मुक्त-हस्त, खैरात करने वाला, दान-शील तथा दानी। गृहपति! यह त्याग-संपत्ति कहलाती है।

"गृहपति! प्रज्ञा-संपत्ति किसे कहते हैं?

"गृहपति! विषय-लोभ, व्यापाद, आलस्य, उद्धतपन तथा कौकृत्य-युक्त चित्त से विचरने वाला जो अकरणीय है उसे करता है तथा जो करणीय है उसे नहीं करता है। अकरणीय के करने से तथा करणीय के न करने से उसके ऐश्वर्य तथा सुख की हानि होती है।

"गृहपति! वह आर्य-श्रावक यह जानकर कि – लोभ, व्यापाद, आलस्य, उद्धतपन तथा कौकृत्य चित्त के उपक्लेश हैं; इन्हें चित्त के उपक्लेश जानकर, इनका प्रहाण कर देता है – ऐसा होने पर आर्य-श्रावक महाप्रज्ञावान, बहुल-प्रज्ञ, सूक्ष्मदर्शी तथा प्रज्ञानिधि कहलाता है। गृहपति! यह प्रज्ञा-संपत्ति कहलाती है।

"गृहपति! जो चारों बातें इष्ट हैं, मनोरम हैं, अच्छी लगने वाली हैं किंतु दुनिया में दुर्लभ हैं, इन चारों की प्राप्ति के चार साधन हैं।

"गृहपति! वह आर्य-श्रावक उत्साह और प्रयत्न से, बाहुबल से, पसीने से तथा धर्मानुसार अर्जित किये हुए, भोग्य पदार्थों को प्राप्तकर चार बातें करता है।

"गृहपति! वह आर्य-श्रावक इस प्रकार अर्जित किये हुए भोग्य-पदार्थों से स्वयं को सम्यक प्रकार सशक्त एवं सुखी रखता है तथा माता-पिता को, पुत्र-स्त्री, दास-दासियों को, मित्रों को सम्यक प्रकार से सशक्त एवं सुखी रखता है। यह उसका पहला कर्तव्य होता है, पहला प्रयास सम्यक परिभोग।

"और गृहपति! वह आर्य-श्रावक इस प्रकार परिश्रम से अर्जित भोग्य-पदार्थों से आग से, पानी से, राजा से, चोर से, अप्रिय उत्तराधिकारी से अथवा अन्य कोई वैसी ही आपदाओं से आत्म-रक्षा करता है,

आत्म-कल्याण करता है। यह उसका दूसरा कर्तव्य होता है, दूसरा प्रयास, सम्यक परिभोग।

"और गृहपति! वह आर्य-श्रावक सम्यक प्रकार से अर्जित भोग्य-पदार्थों से पाँच बलि-कर्म करता है – ज्ञाति-बलि, अतिथि-बलि, पूर्व-प्रेत-बलि, राज-बलि तथा देवता-बलि। यह उसका तीसरा कर्तव्य होता है, तीसरा प्रयास, सम्यक परिभोग।

"और हे गृहपति! वह आर्य-श्रावक इन भोग्य-पदार्थों से, जो श्रमण-ब्राह्मण मद-प्रमाद से विरत रहते हैं, क्षमाशील तथा सदाचारी होते हैं, अपने आपको अपने से ही परिनिर्वृत्त करते हैं, ऐसे श्रमण-ब्राह्मणों को ऊर्ध्व-अग्र दक्षिणा में प्रतिष्ठित करते हैं, जो (प्रतिष्ठा) स्वर्ग-गमन का कारण होती है, जो सुख-विपाक देने वाली होती है तथा जो स्वर्ग की सीढ़ी है। यह उसका चौथा कर्तव्य होता है, चौथा प्रयास, सम्यक परिभोग।"

"भुत्ता भोगा भता भच्चा, वितिण्णा आपदासु मे।
उद्धग्गा दक्खिणा दिन्ना, अधो पञ्चबली कता।
उपट्ठिता सीलवन्तो, सञ्ञता ब्रह्मचारयो॥

"यदत्थं भोगं इच्छेय्य, पण्डितो घरमावसं।
सो मे अत्थो अनुप्पत्तो, कतं अननुतापियं॥
एतं अनुस्सरं मच्चो, अरियधम्मे ठितो नरो।
इधेव नं पसंसन्ति, पेच्च सग्गे पमोदती"ति॥

– *अङ्गुत्तरनिकाय १.४.६१, पत्तकम्मसुत्त*

[भोग्य-पदार्थों को स्वयं खाया-पिया, नौकर-चाकरों का पालन-पोषण किया, आपत्ति पड़ने पर आत्म-रक्षा की, ऊर्ध्व-अग्र दक्षिणा दी, पाँच बलि-कर्म किये, शीलवानों, संयतजनों तथा ब्रह्मचारियों की सेवा की – इन्हीं सब अर्थों की पूर्ति करने के लिए गृहस्थ भोग्य-पदार्थों की इच्छा करता है। तब वह सोचता है कि मैंने अपने उद्देश्य को प्राप्त कर लिया है, मैंने ऐसा कार्य किया है कि मुझे किसी भी प्रकार का अनुताप न हो। जो अपने इन

सुकृतों का स्मरण करता है, वह आर्य-धर्म में स्थित है। यहां इस लोक में भी उसकी प्रशंसा होती है और वह स्वर्ग में भी आनंदित होता है।]

निर्लिप्त कामभोगी

सावत्थी में अनाथपिण्डिक गृहपति को भगवान ने दस प्रकार के कामभोगियों के बारे में विस्तृत रूप से बतलाया। अंत में भगवान ने यह कहा –

गृहपति! जैसे गौ से दूध होता है, दूध से दही होता है, दही से मक्खन होता है, मक्खन से घी होता है, घी से माँड-घी श्रेष्ठ कहलाता है। इसी प्रकार गृहपति! दस प्रकार के कामभोगियों में जो यह एक कामभोगी 'बिना दुस्साहस किये, धर्म से कामभोग के साधनों को खोजता है, बिना दुस्साहस किये कामभोग के साधनों को खोजकर अपने को सुखी करता है, संतृप्त करता है, (भोग-सामग्री को) बाँटता है, पुण्य-कर्म करता है; जो उन कामभोगों को अनासक्त रहकर, अमूर्छित रहकर, बिना उलझे दुष्परिणामों की ओर से सावधान रहकर, प्रज्ञापूर्वक भोगता है – वह दस प्रकार के कामभोगियों में अग्र है, श्रेष्ठ है, प्रमुख है, उत्तम है, प्रवर है।

भोजन-दान की महत्ता

भोजन-दान की महत्ता बताने के लिए अनाथपिण्डिक गृहपति को भगवान ने यह कहा – "आर्य-श्रावक जब भोजन का दान करता है तब ग्रहण करने वाले को चार चीजें देता है।

"आयु का दान करता है, वर्ण का दान करता है, सुख का दान करता है, तथा बल का दान करता है। आयु का दान करने से दिव्य अथवा मानुषी आयु का भागी होता है, वर्ण का दान करने से दिव्य अथवा मानुषी वर्ण का भागी होता है, सुख का दान करने से दिव्य अथवा मानुषी सुख का भागी होता है, बल का दान करने से दिव्य अथवा मानुषी बल का भागी होता है।

"हे गृहपति! भोजन का दान करने वाला आर्य-श्रावक भोजन ग्रहण करने वाले को इन चार चीजों का दान करता है।"

"यो सञ्ञतानं परदत्तभोजिनं, कालेन सक्कच्च ददाति भोजनं।
चत्तारि ठानानि अनुप्पवेच्छति, आयुञ्च वण्णञ्च सुखं बलञ्च॥
सो आयुदायी वण्णदायी, सुखं बलं ददो नरो।
दीघायु यसवा होति, यत्थ यत्थूपपज्जति॥"

– अङ्गुत्तरनिकाय १.४.५८, सुदत्तसुत्त

[जो दूसरों का दिया खाने वाले संयत जनों को योग्य विधि से भोजन का दान करता है वह उन्हें चार चीजों का दान करता है – आयु, वर्ण, सुख तथा बल। वह आयु, वर्ण, सुख तथा बल का दान करने वाला जहां कहीं भी जन्म ग्रहण करता है वह दीर्घायु एवं यशस्वी होता है।]

पाँच प्रकार के भय

अनाथपिण्डिक गृहपति को भगवान ने पांच प्रकार के भयों के बारे में यह कहा -

"हे गृहपति! ये पाँच भय हैं, अहितकर बातें हैं, जिन्हें बिना छोड़े मनुष्य दुश्शील कहलाता है, और नरक में जन्म ग्रहण करता है।"

"कौन-सी पाँच बातें?"

"प्राणी-हिंसा, चोरी, व्यभिचार, झूठ बोलना तथा सुरा-मेरय आदि नशीली चीजों का सेवन करना।

"हे गृहपति! ये पाँच भय हैं, अहितकर बातें हैं, जिन्हें बिना छोड़े मनुष्य दुश्शील कहलाता है, और नरक में जन्म ग्रहण करता है।

"हे गृहपति! ये पाँच भय हैं, अहितकर बातें हैं, जिन्हें छोड़ देने से आदमी सुशील कहलाता है और स्वर्ग में जन्म ग्रहण करता है।"

"कौन-सी पाँच बातें?"

"प्राणी-हिंसा, चोरी, व्यभिचार, झूठ बोलना तथा सुरा-मेरय आदि नशीली चीजों का सेवन।

"हे गृहपति! ये पाँच भय हैं, अहितकर बातें हैं, जिन्हें छोड़ देने से मनुष्य सुशील कहलाता है और स्वर्ग में जन्म ग्रहण करता है।"

"हे गृहपति! प्राणी-हिंसा करने के फलस्वरूप मनुष्य को इसी जन्म में दुःख पैदा होता है, मरने के अनंतर भय-दुःख पैदा होता है तथा जो मानसिक दुःख होता है, प्राणी-हिंसा से विरत रहने के फलस्वरूप न इसी जन्म में भय-दुःख होता है, न मरने के अनंतर भय-दुःख होता है, तथा न मानसिक-दुःख होता है। इस प्रकार प्राणी-हिंसा से विरत रहने वाले का जो भय-दुःख होता है, वह शांत हो जाता है।

"गृहपति! चोरी, व्यभिचार, झूठ बोलने, सुरा-मेरय आदि नशीली चीजों के सेवन करने के फलस्वरूप मनुष्य को इसी जन्म में जो भय-दुःख पैदा होता है, मरने के अनन्तर भय-दुःख पैदा होता है, जो कि मानसिक दुःख होता है। इन चीजों से विरत रहने पर न तो इसी जन्म में भय-दुःख होता है, न मरने के अनंतर भय-दुःख होता है तथा न मानसिक दुःख होता है। भिक्षुओ! जो इन चीजों से विरत रहता है उसका भय-दुःख शांत हो जाता है।"

– अङ्गुत्तरनिकाय २.५.१७४, वेरसुत्त

पाँच वैर-भय की शांति

अनाथपिण्डिक गृहपति को भगवान ने पांच वैर-भय की शांति के बारे में यह कहा –

"गृहपति! जिसके पाँच वैर-भय शांत हो जाते हैं; वह सोतापत्ति के चार अंगों से युक्त हो जाता है; आर्य-ज्ञान की तरह देख और समझ लिया गया होता है। यदि वह चाहे तो अपने बारे में निम्न-घोषणाएं कर सकता है –

"अब मैं नरक-गमन से मुक्त हूं;

"अब मैं पशु-योनि में जन्म ग्रहण करने से मुक्त हूं;

"मेरी प्रेत-योनि क्षीण हो गयी है;

"मेरा दुर्गति में पड़ना क्षीण हो गया है।

"मैं सोतापन्न हो गया हूं। मैं आर्य-अष्टांगिक मार्ग से च्युत नहीं हूं। निर्वाण प्राप्त कर लेना मेरा ध्येय है।"

"कौन-से पाँच वैर-भय शांत हो जाते हैं?"

"गृहपति! जो प्राणी-हिंसा है; प्राणी-हिंसा करने से जो इसी जन्म में या फिर आगे और वैर बढ़ाता है; चित्त में दुःख और दौर्मनस्य भी बढ़ाता है; सोतापत्ति अवस्था को प्राप्त व्यक्ति के इस प्रकार के भय और वैर शांत हो जाते हैं।

"इसी प्रकार चोरी, मिथ्याचार, झूठ बोलने से, नशीली वस्तुओं के सेवन से विरत रहने पर इस प्रकार के भय और वैर शांत हो जाते हैं। यही पाँच वैर-भय शांत हो जाते हैं।"

"किन चार सोतापत्ति के अंगों से युक्त होता है?"

"गृहपति! जो आर्य-श्रावक बुद्ध के प्रति अचल श्रद्धालु होता है – 'ऐसे ही तो हैं वे भगवान! अर्हत, सम्यक-संबुद्ध, विद्या तथा सदाचरण से संपन्न, उत्तम गति प्राप्त, समस्त लोकों के ज्ञाता, सर्वश्रेष्ठ, (पथ-भ्रष्ट घोड़ों की तरह) भटके लोगों को सही मार्ग पर ले आने वाले सारथी, देवताओं और मनुष्यों के शास्ता (आचार्य), बुद्ध, भगवान।'

"गृहपति! जो आर्य-श्रावक धर्म के प्रति अचल श्रद्धालु होता है – 'भगवान द्वारा भली प्रकार आख्यात किया गया यह धर्म सांदृष्टिक है काल्पनिक नहीं, प्रत्यक्ष है, तत्काल फलदायक है, आओ और देखो (कहलाने योग्य है), निर्वाण तक ले जाने योग्य है, प्रत्येक समझदार व्यक्ति के साक्षात करने योग्य है।'

"गृहपति! जो आर्य-श्रावक संघ के प्रति अचल श्रद्धालु होता है – 'सुमार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक संघ, ऋजु मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक संघ, न्याय (सत्य) मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक संघ, उचित मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक संघ, यह जो (मार्ग-फल प्राप्त आर्य) व्यक्तियों के चार जोड़े हैं याने आठ पुरुष-पुद्गल हैं – यही भगवान का श्रावक संघ है, (यही) आवाहन करने योग्य है, पाहुना बनाने (आतिथ्य) योग्य है, दक्षिणा देने योग्य है, अंजलि-बद्ध (प्रणाम) किये जाने योग्य है। लोगों का यही श्रेष्ठतम पुण्य क्षेत्र है।' सुंदर शीलों से युक्त होता है; अखंड, अछिद्र, अमल, निर्दोष, छूटा हुआ, विज्ञों से प्रशंसित, समाधि के अनुकूल शीलों वाला होता है।

"इन चार सोतापत्ति के अंगों से युक्त होता है।"

"प्रज्ञा से अच्छी तरह देखा और जाना इसका आर्य-ज्ञान क्या है?"

"गृहपति! आर्य-श्रावक प्रतीत्य-समुत्पाद को ही ठीक से भावित करता है। इसके होने से यह होता है, इसके नहीं होने से यह नहीं होता है। इस तरह प्रतीत्य-समुत्पाद को भावित करने से सारा दुःख-स्कन्ध रुक जाता है।

"यहां प्रज्ञा से अच्छी तरह देखा और जाना इसका आर्य-ज्ञान होता है।"

– अङ्गुत्तरनिकाय ३.१.२७, पठमवेरसुत्त

एकांत प्रीति-सुख

एक समय श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक पाँच सौ उपासकों के साथ भगवान के पास गया। पास जाकर भगवान का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए अनाथपिण्डिक गृहपति को भगवान ने कहा –

"हे गृहपति! आप लोगों ने चीवर, भिक्षा, शयनासन तथा रोगी की आवश्यकताओं से भिक्षु-संघ की सेवा की है। हे गृहपति! इतने मात्र से संतुष्ट नहीं रहना चाहिए कि हम लोगों ने चीवर, भिक्षा, शयनासन तथा रोगी की आवश्कताओं से भिक्षु-संघ की सेवा की है। इसलिए हे गृहपति! यह सीखना चाहिए कि समय-समय पर एकांत प्रीति-सुख का अनुभव करेंगे।"

ऐसा कहने पर आयुष्मान सारिपुत्त ने भगवान से कहा – "भंते! आपका यह सुभाषित आश्चर्यकर है। भंते! आपका यह सुभाषित अद्भुत है।

"भंते! जिस समय आर्य-श्रावक एकांत प्रीति-सुख का अनुभव करता है, उस समय उसे पाँच बातों की अनुभूति नहीं होती।

"यह जो काम-भोग से उत्पन्न दुःख-दौर्मनस्य होता है, उस समय उसे उसकी अनुभूति नहीं होती;

"यह जो काम-भोग से उत्पन्न सुख-सौमनस्य होता है, उस समय उसे उसकी अनुभूति नहीं होती;

"यह जो अकुशल-कर्म से उत्पन्न दुःख-दौर्मनस्य होता है, उस समय उसे उसकी अनुभूति नहीं होती;

"यह जो अकुशल-कर्म से उत्पन्न सुख-सौमनस्य होता है, उस समय उसे उसकी अनुभूति नहीं होती;

"यह जो कुशल-कर्म से उत्पन्न दुःख-दौर्मनस्य होता है, उस समय उसे उसकी अनुभूति नहीं होती; भंते! जिस समय आर्य-श्रावक एकांत प्रीति-सुख का अनुभव करता है, उस समय उसे इन पाँच बातों की अनुभूति नहीं होती।"

"सारिपुत्त! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा।

"सारिपुत्त! जिस समय आर्य-श्रावक एकांत प्रीति-सुख का अनुभव करता है, उस समय उसे इन पाँच बातों की अनुभूति नहीं होती।"

– अङ्गुत्तरनिकाय २.५.१७६, पीतिसुत्त

अन्य प्रसंग

दासी रोहिणी

श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक की रोहिणी नाम की एक दासी थी। एक दिन उसकी वृद्ध मां, उसके धान कूटने के स्थान पर आकर लेट गयी। मक्खियाँ, उसे घेर कर सूई के बींधने जैसे काटने लगीं। मां ने रोहिणी से उन मक्खियों को हटाने के लिए कहा। रोहिणी ने "मां! हटाती हूं", कह 'मूसल उठा कर मां के शरीर पर बैठी मक्खियों को मार कर नष्ट करूँगी' सोच मां को मूसल का प्रहार दे, उसे मार डाला। मां को मरा देख, 'मां मर गयी' सोच रोना प्रारंभ कर दिया। इस घटना की खबर जब श्रेष्ठी को लगी, तब उसने रोहिणी की मां का शरीर-कृत्य करवा कर, विहार जा, सारी बात शास्ता को कही। शास्ता ने कहा – हे गृहपति! न केवल अभी इसने, 'मां के शरीर की मक्खियों को मारूँगी' सोच, उसे मूसल से मार डाला है, पूर्व (-जन्म) में भी मार डाला था।

अंत में भगवान ने यह गाथा कही -

सेय्यो अमित्तो मेधावी, यञ्चे बालानुकम्पको।
पस्स रोहिणिकं जम्मिं, मातरं हन्त्वान सोचति॥

– जातक १.१.४५, रोहिणिजातक

[मूर्ख दयालु (मित्र) की अपेक्षा बुद्धिमान शत्रु अच्छा है। मूर्ख रोहिणी को देखो। मां को मार कर अब शोक करती है।]

शराबी ठग

एक समय सावत्थी में शराबियों ने इकट्ठे होकर आपस में सलाह की – "हमारे पास शराब के लिए पैसा नहीं रहा। अब पैसा कहां से आये?"

एक अत्यंत धूर्त ने कहा – "चिंता मत करो। एक उपाय है।"

"कौन-सा उपाय?"

"श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक अँगुली में अँगूठी पहनता है, बारीक वस्त्र धारण करता है, इन चीजों से सज-धज कर राजा की सेवा में जाता है। हम शराब की बाटी में बेहोशी की दवा मिला, शराब की दुकान लगा कर बैठ, अनाथपिण्डिक के आने के समय 'महाश्रेष्ठी इधर पधारें' कह उसे बुलायेंगे और उसको शराब पिलाकर, उसके बेहोश हो जाने पर, उसकी अँगुली की अँगूठी और वस्त्र उतार, उससे शराब पीने के लिए पैसे जुटायेंगे।" उन्होंने 'अच्छा' कह श्रेष्ठी के आने के समय, उसके रास्ते पर जाकर कहा – "स्वामी! जरा इधर से पधारें। हमारे पास उत्तम किस्म की शराब है, उसमें से थोड़ी आप चखें।"

सोतापन्न आर्य-श्रावक अनाथपिण्डिक के लिए शराब का क्या काम? पर उन धूर्त्तों की परीक्षा लूँगा, यह सोच, श्रेष्ठी उनकी दुकान की ओर चल पड़ा। उसने मन-ही-मन सोचा – "इनके क्रियाकलाप से ऐसा लग रहा है कि अभी तक इन्होंने पिया नहीं है, पर क्या यह संभव है कि इनके पास शराब हो और ये पियें नहीं? श्रेष्ठी ने थोड़ा धमकाते हुए कहा – "जब तुम लोग स्वयं नहीं पी रहे हो, तब अवश्य ही इसमें कोई चाल है। लगता है, सीधे-सादे लोगों को ठगने के लिए तुम लोगों ने कुछ कर रखा है। मदिरा-पात्र में कुछ मिलाया तो नहीं है, जिसे पिलाकर लोगों को बेहोश करके उन्हें लूटा जा सके? तुम लोग खाली प्रशंसा करते हो, पर स्वयं पीने की हिम्मत नहीं कर रहे हो। धूर्त्तो! तुम लोग भागो यहां से।"

'धूर्त्तों की करनी तथागत से कहूंगा' यह सोच श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक ने, जेतवन जाकर, सारा हाल तथागत को बताया। भगवान ने कहा – हे गृहपति! अब तो वे धूर्त्त तुझे ठगना चाहते थे; पूर्व समय में पंडितों को भी ठगना चाहते थे।

रख न सका कामद घट

यह प्रसंग श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक के, जिसका परिवार धर्म के रंग में सराबोर था, भांजे का है। अपने मामा के आचरण के विपरीत, यह युवक दिन-रात मौज-मस्ती में डूबा रहता और उसके लिए अपनी दौलत लुटाता फिरता। अपने जीवन की उसे तनिक भी फिक्र नहीं थी।

श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक द्वारा शास्ता से अपने भांजे के आचार-विचार के बारे में पूछने पर, शास्ता ने उसके किसी एक पूर्वजन्म की घटना सुनायी।

उस समय, बोधिसत्त्व ने वाराणसी में एक श्रेष्ठी के घर जन्म लिया। श्रेष्ठी बड़ा ही समृद्ध था, जो कि बोधिसत्त्व के लिए अपार धनराशि छोड़कर मृत्यु को प्राप्त हो गया। श्रेष्ठी पद पर आसीन होने पर बोधिसत्त्व ने पैतृक-धनसंपत्ति में वृद्धि कर उसका समुचित भोग करते हुए, सद्गृहस्थ का जीवनयापन किया। उस समय वह (अनाथपिण्डिक का भांजा) बोधिसत्त्व का पुत्र होकर पैदा हुआ। मृत्यु के उपरांत बोधिसत्त्व ने पुत्र के लिए अतिरिक्त चालीस करोड़ धन जमीन में गड़ा हुआ छोड़ा। अगले जन्म में बोधिसत्त्व देवराज शक्र होकर पैदा हुए। इतनी धन-दौलत पाकर बोधिसत्त्व का पुत्र अपने को संभाल नहीं सका। आहार और विहार दोनों में ही भटक गया। भोजन में मांस-मदिरा के बिना उसे चैन नहीं मिलता। नाच-गाना, खेल-तमाशा और तरह-तरह की रंगरलियों में उसका समय व्यतीत होता। इस प्रमादपूर्वक जीवन जीने में उसकी सारी संपत्ति को बरबाद होने में अधिक समय नहीं लगा। सारा धन समाप्त हो जाने पर, अब उसे न तो कायदे का भोजन मिलता, न ही वस्त्र इत्यादि। गली-कूचे में जो कुछ भी पाता खा लेता और चीथड़े पहनकर इधर-उधर भटकता रहता। मृत्यु के बाद उसका पिता बोधिसत्त्व देवेन्द्र शक्र होकर जन्मा था। अपने पूर्व बेटे की दुर्गति देखकर, शक्र ने पुत्र-प्रेमवश उसके लिए एक युक्ति निकाली। पुत्र को एक ऐसा घड़ा दिया जो उसकी सारी कामनाओं की पूर्ति करता। पिता शक्र ने पूर्व-पुत्र को इस बात से सावधान किया कि वह घड़े को संभालकर रखे।

वह टूटने-फूटने न पाय। जब तक वह घड़ा उसके पास रहेगा, उसे किसी चीज की कमी नहीं होगी।

पर बेटा सुधरे क्यों? अपनी पुरानी आदत के अनुसार, वह वैसी ही मौज-मस्ती और बेहोशी में मस्त रहता। मांस-मदिरा का सेवन कर वह इधर-उधर व्यर्थ में घूमता। शक्र के उपदेश की अवहेलना कर, प्रमादवश घड़े को आकाश में उछालता और लोगों को तमाशा दिखाता। पर यह तमाशा कितने दिन चलता! एक बार घड़ा हाथ से छूटा और जमीन पर गिरकर टूट गया। अब बेटे की समृद्धि गायब! फिर वह अपनी पूर्व-स्थिति को प्राप्त हो गया। गली-कूचे में घूमता, उच्छिष्ट खाता और चीथड़े पहनता। हाथ में खप्पर लेकर भीख मांगता और जहां कहीं सो जाता। एक दिन ऐसे में ही सोते समय, एक दीवार के गिरने से वह दबा और वहीं उसके प्राण छूट गये।

शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कह इस आशय की गाथाएँ कहीं –

सब्बकामददं कुम्भं, कुटं लद्धान धुत्तको।
याव नं अनुपालेति, ताव सो सुखमेधति॥
यदा मत्तो च दित्तो च, पमादा कुम्भमब्भिदा।
तदा नग्गो च पोत्थो च, पच्छा बालो विहञ्ञति॥
एवमेव यो धनं लद्धा, पमत्तो परिभुञ्जति।
पच्छा तप्पति दुम्मेधो, कुटं भित्वाव धुत्तको॥

– जातक १.२.१२१-१२३, सुराघटजातक

[धूर्त सब कामनाओं की पूर्ति करने वाले घड़े को पाकर जब तक उसकी रक्षा करता है तब तक सुख भोगता है। लेकिन जब बेहोशी से, अभिमान से तथा प्रमाद से घड़े को फोड़ डालता है, तो पीछे वह मूर्ख नंगा हो तथा चीथड़े लपेटे

मारा जाता है। उसी तरह जो कोई धन प्राप्त कर बेहिसाब खर्च करता है, वह मूर्ख उस धूर्त की ही तरह, जिसका घड़ा फूट गया, पीछे कष्ट पाता है।]

विवेकहीन भिक्षु

जनपद से चारिका करता हुआ एक भिक्षु जेतवन पहुँचा। पात्र, चीवर रख के, शास्ता के पास पहुँचकर उनका अभिवादन कर, तरुण श्रामणेरों से पूछा – "आयुष्मानो! यहां अतिथि भिक्षुओं पर भोजन-दान, वस्त्र आदि देकर कौन उपकार करते हैं?"

"आयुष्मान! महाश्रेष्ठी अनाथपिण्डिक और विशाखा नाम की महाउपासिका, दोनों माता-पिता के समान उपकार करते हैं।"

अगले दिन उसने भिक्षा हेतु सुबह ही समय से पहले ही नगर में प्रवेश किया। तब तक और कोई भिक्षु भिक्षाटन के लिए नहीं निकला था। पहले वह अनाथपिण्डिक के द्वार पर गया। उसके असमय पहुँचने के कारण किसी ने उस पर ध्यान नहीं दिया। वहां उसे कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। उसके ठीक बाद वह माता विशाखा के द्वार पर पहुँचा। बहुत सवेरे पहुँचने के कारण उसे वहां भी कुछ नहीं मिला। जहां-तहां घूम कर यवागु समाप्त होने पर पहुँचा। और फिर जहां-तहां घूमकर भात समाप्त होने पर पहुँचा। विहार पहुँचकर वह दोनों कुलों की निंदा करने लगा – "ये भिक्षु कहते हैं कि ये कुल श्रद्धावान हैं, श्रद्धा करते हैं, किंतु ये कुल तो अश्रद्धावान हैं, इनमें श्रद्धा नहीं है।"

एक दिन भिक्षुगण धर्मसभा में इस बात पर चर्चा करने लगे – "आयुष्मानो! अमुक जनपद में रहने वाला भिक्षु सूर्योदय के समय गृहस्थों के घर भिक्षाटन के लिए गया और भिक्षा न प्राप्त होने से उनकी निंदा करते हुए घूम रहा है।"

शास्ता ने आकर पूछा – "भिक्षुओ! क्या बातचीत कर रहे हो?"

"अमुक बातचीत।"

शास्ता ने उस भिक्षु को बुलाकर पूछा – क्या तूने सचमुच ऐसा किया। भिक्षु के अपना दोष स्वीकार किये जाने पर शास्ता ने कहा – "भिक्षु! तू क्रोध क्यों करता है? पूर्व समय में जब बुद्ध उत्पन्न नहीं हुए थे, उस समय तपस्वी भी गृहस्थों के घर जाकर भिक्षा न मिलने पर शांत रहे थे।"

धर्मपंथ ही पंथ है

जिस प्रकार श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक के विचार और व्यवहार में रत्न का अर्थ त्रिरत्न हो गया, उसी प्रकार उसके लिए पंथ का आशय धर्मपंथ हो गया। बुद्ध, धर्म और संघ की शरण लेने के पश्चात वह कभी भी इस राह से विचलित नहीं हुआ।

संत जनम जग मंगल हेतु

भिक्षुओ! सत्पुरुष का जन्म जब किसी कुल में होता है, तब केवल उस के अर्थ, हित, सुख के लिए ही नहीं बल्कि उसके माता-पिता, स्त्री-पुत्र, दास-दासी, नौकर-चाकर, मित्र, श्रमण-ब्राह्मणों तथा अनेकों के अर्थ, हित और सुख के लिए होता है। जैसे आकाश में छाया हुआ मेघ हर प्रकार की खेती पर समान भाव से वर्षा करता है, वैसे ही संत पुरुष का जन्म अनेकों के अर्थ, हित और सुख के लिए होता है।

> हितो बहुन्नं पटिपज्ज भोगे, तं देवता रक्खति धम्मगुत्तं।
> बहुस्सुतं सीलवतूपपन्नं, धम्मे ठितं न विजहति कित्ति॥
>
> धम्मट्ठं सीलसम्पन्नं, सच्चवादिं हिरीमनं।
> नेक्खं जम्बोनदस्सेव, को तं निन्दितुमरहति।
> देवापि नं पसंसन्ति, ब्रह्मुनापि पसंसितो॥
>
> – *अङ्गुत्तरनिकाय २.५.४२, सप्पुरिससुत्त*

[जो बहुतों का हित करने में लगा रहता है, उस धर्म-रक्षित की देवता रक्षा करता है। जो बहुश्रुत होता है, सदाचारी होता है, धर्मिष्ठ होता है, कीर्ति उस आदमी का त्याग नहीं करती है। जो धर्मिष्ठ, सदाचारी, सत्यवादी, लज्जायुक्त होता है, उस खरे सोने के समान सत्पुरुष की कौन निंदा कर सकता है? देवता भी उसकी प्रशंसा करते हैं तथा ब्रह्मा द्वारा भी वह प्रशंसित होता है।]

चित्तेन संवरो साधु

एक समय अनाथपिण्डिक गृहपति को भगवान ने यह कहा –

“गृहपति! चित्त अरक्षित रहने से कायिक-कर्म भी अरक्षित रहते हैं, वाचिक-कर्म भी अरक्षित रहते हैं, मानसिक-कर्म भी अरक्षित रहते हैं। जिस के काया, वाणी तथा मन के कर्म अरक्षित रहते हैं, उसके काया, वाणी, मन के कर्म ‘चूते’ (रिसते, स्रावी - तृष्णा के कारण स्राव वाले) हैं। जिसके काया, वाणी तथा मन के कर्म ‘चूते’ हैं उसके काया, वाणी तथा मन के कर्म ‘सड़े’ होते हैं। जिसके काया, वाणी तथा मन के कर्म ‘सड़े’ होते हैं उसका मरण अच्छी तरह नहीं होता, उसकी कालक्रिया (मृत्यु) भी अच्छी तरह नहीं होती।

“गृहपति! जैसे यदि कूटागार (शिखर वाला घर) अच्छी तरह से आच्छादित न हो, तो शिखर भी अरक्षित रहता है, कड़ियां भी अरक्षित रहती हैं तथा दीवार भी अरक्षित रहती है। शिखर भी चूता है, कड़ियां भी चूती हैं, दीवार भी चूती है। शिखर भी सड़ जाता है, कड़ियां भी सड़ जाती हैं, दीवार भी सड़ जाती है। इसी प्रकार गृहपति! चित्त के अरक्षित रहने पर कायिक-कर्म भी अरक्षित रहता है, कालक्रिया अच्छी तरह नहीं होती।

“गृहपति! चित्त रक्षित रहने से कायिक-कर्म, वाचिक-कर्म तथा मानसिक-कर्म भी रक्षित रहते हैं। जिसके काया, वाणी तथा मन के कर्म रक्षित रहते हैं उसके काया, वाणी तथा मन के कर्म ‘चूते’ नहीं। उसके काया, वाणी तथा मन के कर्म ‘सड़ते’ नहीं। उसकी मृत्यु अच्छी तरह होती है, उसकी कालक्रिया भी अच्छी तरह होती है।

“गृहपति! जैसे यदि कूटागार (शिखर-गृह) अच्छी तरह से आच्छादित हो, तो शिखर भी सुरक्षित रहता है, कड़ियां भी सुरक्षित रहती हैं तथा दीवार भी सुरक्षित रहती है। शिखर भी नहीं चूता, कड़ियां भी नहीं चूतीं, दीवार भी नहीं चूती। शिखर भी नहीं सड़ता, कड़ियां भी नहीं सड़तीं, दीवार भी नहीं सड़ती। इसी प्रकार गृहपति! चित्त के सुरक्षित रहने पर कायिक-कर्म भी सुरक्षित रहते हैं, कालक्रिया भी अच्छी तरह होती है।”

– अङ्गुत्तरनिकाय १.३.११०, अरक्खितसुत्त

सम्यक दृष्टि

एक दिन श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक अपने पांच सौ तैर्थिक साथियों के साथ गंध, माला, मधु, वस्त्र इत्यादि लिवाकर जेतवन गया। वहां भगवान का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। अन्य-तैर्थिक भी भगवान का अभिवादन कर अनाथपिण्डिक के समीप बैठ गये।

तब भगवान ने सिंह-नाद करते तरुण-सिंह की तरह उन्हें नाना प्रकार की धर्म-कथाएं कहीं। तैर्थिकों ने धर्म-कथाएं सुन, प्रसन्न-चित्त से पूर्वमत को छोड़कर बुद्ध की वंदना की। उस दिन से वे प्रायः अनाथपिण्डिक गृहपति के साथ गंध, माला इत्यादि ले, विहार जाकर, धर्म सुनते, दान देते, शील का पालन करते तथा उपोसथ आदि रखने लगे।

भगवान के सावत्थी से राजगह चले जाने पर वे पुनः दूसरे मतों की शरण चले गये तथा अपने पुराने स्थान पर वापस लौट आये। सात-आठ महीने बाद भगवान के जेतवन लौटने पर वे तैर्थिक श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक के साथ पुनः गंध, माला इत्यादि लेकर भगवान के पास विहार गये तथा भगवान की वंदना कर एक ओर बैठ गये। तब अनाथपिण्डिक ने भगवान से उनके राजगह चले जाने पर अन्य-तैर्थिकों द्वारा तथागत की शरण छोड़, फिर दूसरे मतों की शरण ग्रहण करने की बात कही।

भगवान ने मधुर व करुणाभरी वाणी से उपासकों से उनकी अनुपस्थिति में तीन रत्नों की शरण छोड़ अन्य मतों की शरण चले जाने की बात पूछी। इस पर तैर्थिकों ने अपने कृत्य को बिना छिपाये स्वीकार किया।

तब भगवान ने तीन रत्नों के गुणों को प्रकाशित करते हुए कहा –

“उपासको! नीचे अवीचि नामक नरक से ऊपर भवाग्र नामक सर्वोपरि देव-लोक तक जितनी अप्रमाण लोक-धातुएं हैं, उनमें शील-सदाचार आदि गुणों में बुद्ध के समान भी कोई नहीं है, बढ़ कर तो कहां से होगा?

उपासका हेट्ठा अवीचि उपरि भवग्गं परिच्छेदं कत्वा तिरियं अपरिमाणासु लोकधातूसु सीलादीहि गुणेहि बुद्धेन सदिसो नाम नत्थि, कुतो अधिकतरो"ति

– जातक-अट्ठकथा १.१.१, अपण्णकजातकवण्णना

"यावता, भिक्खवे, सत्ता अपदा वा द्विपदा वा चतुप्पदा वा बहुप्पदा वा, तथागतो तेसं अग्गमक्खायति ।

– संयुत्तनिकाय ३.५.१३९, तथागतसुत्त

["भिक्षुओ! बिना पैर वाले या दो पैर वाले या चार पैर वाले या बहुत पैर वाले जितने भी प्राणी हैं; तथागत उनमें सर्वश्रेष्ठ कहे जाते हैं।]

"यं किञ्चि वित्तं इध वा हुरं वा, सग्गेसु वा यं रतनं पणीतं।
न नो समं अत्थि तथागतेन, इदम्पि बुद्धे रतनं पणीतं॥

– खुद्दकपाठ ६.३, रतनसुत्त

["इस लोक में अथवा अन्य लोकों में जो भी धन-संपत्ति है और स्वर्गों में जो भी अमूल्य-रत्न हैं, उनमें से कोई भी तथागत (बुद्ध) के समान (श्रेष्ठ) नहीं है। (सचमुच) यह भी बुद्ध में उत्तम गुण-रत्न है।]

"ये केचि बुद्धं सरणं गतासे, न ते गमिस्सन्ति अपायभूमिं।
पहाय मानुसं देहं, देवकायं परिपूरेस्सन्ति॥

– दीघनिकाय २.३३२, महासमयसुत्त

["जो बुद्ध की शरण गये हैं, वे अपाय गतियों (निरय लोकों) में नहीं जाएंगे। मनुष्य देह छोड़कर वे देव-लोक को भरेंगे।]

"ये केचि धम्मं सरणं गतासे, न ते गमिस्सन्ति अपायभूमिं।
पहाय मानुसं देहं, देवकायं परिपूरेस्सन्ति॥

– जातक-अट्ठकथा १.१.१, अपण्णकजातकवण्णना

["जो धर्म की शरण गये हैं, वे अपाय गतियों (निरय लोकों) में नहीं जाएंगे। मनुष्य देह छोड़कर वे देव-लोक को भरेंगे।]

"ये केचि सङ्घं सरणं गतासे, न ते गमिस्सन्ति अपायभूमिं।
पहाय मानुसं देहं, देवकायं परिपूरेस्सन्ति॥

– जातक-अट्ठकथा १.१.१, अपण्णकजातकवण्णना

["जो संघ की शरण गये हैं, वे अपाय गतियों (निरय लोकों) में नहीं जाएंगे। मनुष्य देह छोड़कर वे देव-लोक को भरेंगे।]

"बहुं वे सरणं यन्ति, पब्बतानि वनानि च।
आरामरुक्खचेत्यानि, मनुस्सा भयतज्जिता॥

– धम्मपद १८८, बुद्धवग्ग

["मनुष्य भय के मारे पर्वतों, वनों, उद्यानों, वृक्षों, चैत्यों – आदि बहुतों की शरण में जाते हैं –

"नेतं खो सरणं खेमं, नेतं सरणमुत्तमं।
नेतं सरणमागम्म, सब्बदुक्खा पमुच्चति॥

– धम्मपद १८९, बुद्धवग्ग

"(परंतु) यह शरण मंगलकारी नहीं है, यह शरण उत्तम नहीं है। इस शरण को पाकर सभी दुःखों से छुटकारा नहीं होता।]

"यो च बुद्धञ्च धम्मञ्च, सङ्घञ्च सरणं गतो।
चत्तारि अरियसच्चानि, सम्मप्पञ्ञाय पस्सति॥

"दुक्खं दुक्खसमुप्पादं, दुक्खस्स च अतिक्कमं।
अरियं चट्ठङ्गिकं मग्गं, दुक्खूपसमगामिनं॥

"एतं खो सरणं खेमं, एतं सरणमुत्तमं।
एतं सरणमागम्म, सब्बदुक्खा पमुच्चति॥"

– धम्मपद १९०-१९२, बुद्धवग्ग

["जो बुद्ध, धर्म और संघ की शरण गया हो, जो चार आर्यसत्यों – दुःख, दुःख-समुदय, दुःख-निरोध और दुख-निरोध-गामी आर्य अष्टांगिक

मार्ग – को सम्यक प्रज्ञा से देखता है, यही मंगलदायक शरण है, यही उत्तम शरण है। इसी शरण को प्राप्त कर (व्यक्ति) सभी दुःखों से मुक्त होता है।"]

दत्तचित्त तैर्थिक भगवान की अमृतवाणी का श्रवण कर रहे थे। भगवान ने उन्हें धर्म के मर्म को समझाते हुए कहा – "बुद्धानुस्सति, धम्मानुस्सति, और सङ्घानुस्सति जैसे कर्मस्थानों एवं सोतापन्न, सकदागामी, अनागामी तथा अर्हत जैसों के मार्ग का त्याग कर तुम लोगों ने अपना अहित किया। इनका अभ्यास करने वाला साधक क्रमशः निर्वेद, विराग, उपशम, अभिज्ञा और संबोधि का अनुभव करता हुआ अपने लक्ष्य निर्वाण को प्राप्त कर लेता है।"

उन तैर्थिकों को अनेक प्रकार से उपदेश करते हुए शास्ता ने पूर्वजन्म की एक घटना सुनायी। उस समय कुछ अश्रद्धालु कुतर्कियों ने बुद्ध की उपेक्षा कर अनुपयुक्त मतों की शरण में जाकर भूत-प्रेतों द्वारा अपना ही सर्वनाश कर लिया।

इसलिए प्रत्येक काल के बुद्धों ने योग्य और उपयुक्त शरण (त्रिशरण) को ही सभी दुःखों से मुक्ति का साधन बताया है।

पहले जानो तब मानो

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। एक दिन अनाथपिण्डिक मध्याह्न के समय भगवान के दर्शन के लिए घर से चल पड़ा। कुछ दूर जाने के बाद उसे ध्यान आया कि यह भगवान के दर्शन का उचित समय नहीं है। भगवान समाधिस्थ होंगे, अन्य साधक भिक्षु भी ध्यानस्थ होंगे। तब तक के लिए जो परिव्राजक हैं, उनके आश्रम में होता चलूं। वह जिस आश्रम की ओर गया, वहां के परिव्राजक इकट्ठे होकर, ऊंची आवाज में, हल्ला करते हुए, शोर मचाते हुए, अनेक प्रकार की दुनियादारी की बातें करते हुए बैठे थे। उन्होंने अनाथपिण्डिक को दूर से आते देखा। अनाथपिण्डिक महाधनी था। महादानी था। अतः वे स्वभावतः चाहते थे कि अनाथपिण्डिक उनके आश्रम में आये, परंतु वह यह भी जानते थे कि अनाथपिण्डिक मौन-प्रिय श्रमण गोतम का परम श्रद्धालु

शिष्य है। जैसे श्रमण गोतम, वैसे ही उनका यह शिष्य भी मौन-प्रेमी है। यह मौन रहने का अभ्यासी है, मौन-प्रशंसक है। यह ऐसी ही परिषद में जाता है, जहां लोग हल्ला-गुल्ला नहीं करते। हमारे यहां भी तभी आयगा, जब कि हम खामोश हो जायँ। यह सोच कर वे परिव्राजक खामोश हो गये।

तब अनाथपिण्डिक गृहपति उन परिव्राजकों के पास जा, उनका कुशल-क्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए अनाथपिण्डिक गृहपति से उन परिव्राजकों ने यह पूछा –

"गृहपति! श्रमण गोतम का क्या मत है?"

"आयुष्मान! मैं भगवान के सभी मतों से परिचित नहीं हूं।"

"गृहपति! यदि तू श्रमण गोतम के सभी मतों को नहीं जानता, तो यह बता कि भिक्षुओं का क्या मत है?"

"आयुष्मान! मैं भिक्षुओं के सभी मतों से परिचित नहीं हूं।"

"गृहपति! यदि तू श्रमण गोतम के मत को नहीं जानता, न ही भिक्षुओं के सभी मतों को जानता है, तो यह बता कि तेरा अपना मत क्या है? तू किस मत को मानता है?"

"आयुष्मानो! मेरे लिए अपना मत बताना मुश्किल नहीं है। लेकिन पहले आप अपना मत बतायें, फिर मैं अपना मत बताऊंगा।"

गृहपति अनाथपिण्डिक का जवाब सुनकर वे अपना मत बताने लगे। एक बोला "श्रेष्ठी, मेरा मत यह है कि लोक शाश्वत है। आगे मेरा मानना है कि यही मत सत्य है और दूसरे सभी मिथ्या।"

दूसरे परिव्राजक ने उसका उल्टा कहा, "गृहपति मेरी दृष्टि में लोक अशाश्वत है। यही मत सत्य है और दूसरे सभी मत व्यर्थ हैं।"

इसी प्रकार अन्य परिव्राजकों ने भी अपने-अपने मत व्यक्त किये। किसी ने कहा, "लोक अनंत है। यही मत सत्य है, शेष सब झूठे। किसी ने लोक (अन्तवान) है ...., जीव और शरीर एक ही है ...., तथागत मरने के बाद रहते हैं ...., तथागत मरने के बाद नहीं रहते हैं। यही मत सत्य है,

दूसरे मत व्यर्थ हैं।" इसी प्रकार सभी अपने-अपने मतों के सत्य होने और अन्य मतों के झूठे होने का दावा करते रहे।

उन परिव्राजकों के भिन्न-भिन्न मतों को सुन लेने के बाद अनाथपिण्डिक ने कहा "आपने जो यह कहा कि लोक शाश्वत है, यही मत सत्य है बाकी सब मिथ्या। यह किसी दूसरे की सुनी-सुनायी बात है जो आपके भ्रम का परिणाम है। यह लोक उत्पन्न है, संस्कृत है, (प्रतीत्यसमुत्पन्न) किसी कारण से पैदा हुआ है। इसलिए जो कुछ उत्पन्न है, रचित है, कल्पित है, वह अनित्य है और जो अनित्य है, वह दुःख है, अनात्म है। पर आप अपने मत में ही लीन हैं, लिप्त हैं, आसक्त हैं।

"जो यह कहते हैं कि लोक अशाश्वत है, यही मत सत्य है दूसरे मत झूठे। जो यह कहते हैं कि तथागत मरने के बाद रहते हैं ...., तथागत मरने के बाद नहीं रहते हैं ....। ये सारे मत सुनी-सुनायी बातों पर आधारित हैं, कल्पित हैं, । अतः अनित्य हैं, दुःख हैं और अनात्म हैं। पर इन मतों के मानने वाले इनमें लिप्त और आसक्त हैं।"

सोतापन्न अनाथपिण्डिक ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कहा "लोक में जो कुछ भी है वह सब उत्पन्न है, संस्कृत है, चित्तज तथा प्रतीत्यसमुत्पन्न है। इसलिए वह सब अनित्य है, जो अनित्य है वह दुःख है और जो दुःख है वह अनात्म है। वह न 'मैं हूं', न 'मेरा है', न 'मेरी आत्मा' है। मैंने इसे प्रज्ञा द्वारा यथार्थ रूप से जान लिया है, अनुभव किया है। इसके आगे मुक्ति को भी यथार्थ रूप से जानता हूं। यह सब जानकर तब इन्हें मानता हूं, केवल सुनकर अथवा चिंतन मात्र से नहीं।"

श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक द्वारा ऐसा कहे जाने पर वे सभी परिव्राजक चुप हो गये। वे मूढ़ की तरह बैठे रहे। उनके मुँह लटक गये। वे निस्तेज हो गये। गृहपति सुदत्त उठा और भगवान के पास पहुँचा। पास जाकर भगवान का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक ने परिव्राजकों के साथ हुए वार्तालाप को भगवान से कह सुनाया।

"गृहपति! बहुत अच्छा! बहुत अच्छा! इसी प्रकार समय-समय पर धर्मानुसार ऐसे मूर्खों का मुँह बंद कर देना चाहिए।" इस प्रकार अनाथपिण्डिक गृहपति के कथन का शास्ता ने अनुमोदन किया।

अनाथपिण्डिक गृहपति के चले जाने के बाद भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया – "भिक्षुओ, इस धर्म-विनय (बुद्ध-शासन) में जो भिक्षु उपसंपदा के हिसाब से सौ वर्ष का भी हो गया होगा, वह भी दूसरे संप्रदाय के परिव्राजकों को इसी प्रकार अनुशासित करेगा, जैसे इस समय अनाथपिण्डिक गृहपति ने किया।"

– अंगुत्तरनिकाय ३.१०.१५७, किंदिट्ठिक सुत्त

भोजन-दान फलीभूत हुआ

एक बार भगवान बुद्ध के वर्षावास के बाद चारिका से लौटने पर सावत्थीवासियों ने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ का अतिथि सत्कार करने हेतु भोजन-दान की व्यवस्था की। विहार में एक धर्मघोषक भिक्षु को नियुक्त किया गया, जिसके पास आकर लोग जितने भिक्षु मांगते, वह उन्हें उतने ही चुन कर दे दिया करता।

एक दिन एक निर्धन वृद्धा ने एक ही व्यक्ति के लिए भोजन तैयार किया और धर्मघोषक के पास जाकर एक भिक्षु को अपने यहां भेजने के लिए निवेदन किया। लगभग सभी भिक्षु भिक्षा-प्राप्ति के लिए जा चुके थे।

धर्मघोषक ने बताया – "सभी भिक्षु भिक्षाटन हेतु जा चुके हैं। केवल महास्थविर सारिपुत्त विहार में हैं। तू उन्हें दान दे सकती है।"

प्रसन्नचित्त वृद्धा ने जेतवन के द्वार पर खड़ी हो, स्थविर के आने के समय उन्हें प्रणाम कर, हाथ से पात्र ले, घर जाकर बिठाया। 'एक निर्धन वृद्धा ने धर्मसेनापति को अपने घर भोजन के लिए आमंत्रित किया है' यह बात बहुत से श्रद्धालु परिवारों को ज्ञात हुई तो उन्होंने वृद्धा के यहां अच्छे-अच्छे वस्त्र, स्वादिष्ट भोज्य-पदार्थ तथा काफी मात्रा में धन इत्यादि भिजवाया जिससे कि महास्थविर सारिपुत्त के आतिथ्य-सत्कार में वृद्धा द्वारा

कोई कमी न रह जाय। कोशलनरेश पसेनदि ने वस्त्र, एक थैली में हजार कार्षापण और भोजन-भरे बर्तन भेज दिये और कहला भेजा कि हमारे आर्य को भोजन परोसते समय यह वस्त्र पहने और यह कार्षापण खर्च करें। इसी प्रकार श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक ने, माता विशाखा ने तथा अन्य परिवारों ने भी नाना-प्रकार की वस्तुएं तथा धन वृद्धा के घर भिजवाया। इस प्रकार एक ही दिन में उस वृद्धा को एक लाख कार्षापण मिले। स्थविर उसका दिया हुआ यवागु, खज्जक तथा भात खाकर भोजन-दान का अनुमोदन कर उसे सोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित कर विहार लौट आये।

धर्म-सभा में भिक्षुओं ने महास्थविर की प्रशंसा करनी आरंभ की – "आयुष्मानो! धर्मसेनापति ने वृद्धा को दरिद्रता से मुक्ति दिलायी। उन्होंने उसका दिया हुआ भोजन प्रसन्नचित्त से खाया।"

शास्ता ने आकर पूछा – "भिक्षुओ! क्या बातचीत कर रहे हो?" 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा – "भिक्षुओ! न केवल अभी सारिपुत्त इस वृद्धा के सहायक हुए हैं बल्कि पहले भी इसके सहायक हुए हैं, न केवल अभी उसका दिया भोजन प्रसन्न-चित्त से खाया है बल्कि पहले भी खाया है।"

धर्म सदा रक्षा करे

जब कभी श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक अस्वस्थ होता और दुर्बलता के कारण विहार जाकर भगवान के दर्शन करने में असमर्थ हो जाता, तब अपने किसी संदेशवाहक को भगवान के पास भेजता। उससे कहता कि तुम जाकर मेरी ओर से भगवान के चरणों में सिर से वंदना करना और उन्हें मेरी बीमारी के बारे में बताना। इसके बाद स्थविर सारिपुत्त तथा आयुष्मान आनन्द से मिलने के लिए कहता। भगवान की भांति इन स्थविरों की वंदना करके अपनी बीमारी का हाल बताने के लिए कहता। फिर महास्थविर से यह निवेदन करने के लिए कहता – "भंते! यदि आप बीमार पड़े गृहपति के घर पधारने की कृपा करते तो बड़ा ही अच्छा होता।" ऐसे अवसरों पर महास्थविर सारिपुत्त स्वयं या आयुष्मान आनन्द को अनुगामी श्रमण के रूप में लेकर

आते और श्रेष्ठी को धर्मोपदेश करते जिसके अभ्यास से श्रेष्ठी स्वस्थ हो जाता।

एक बार संदेशवाहक के ऐसे ही निवेदन पर आयुष्मान सारिपुत्त तथा आनन्द अनाथपिण्डिक गृहपति के घर पहुँचे, और बिछे आसन पर बैठ गये। तब आयुष्मान सारिपुत्त ने अनाथपिण्डिक गृहपति से उसके स्वास्थ्य के बारे में पूछा। गृहपति ने उत्तर दिया – "भंते! मेरी तबियत अच्छी नहीं है।"

"गृहपति! अज्ञानी लोग बुद्ध के प्रति जिस अश्रद्धा से युक्त होकर मरने के बाद नरकगामी होते हैं वैसी अश्रद्धा आप में नहीं है। बुद्ध के प्रति आपकी श्रद्धा दृढ़ है – "ऐसे ही तो हैं वे भगवान! अर्हत, सम्यक-संबुद्ध, विद्या तथा सदाचरण से संपन्न, उत्तम गति प्राप्त, समस्त लोकों के ज्ञाता, सर्वश्रेष्ठ, (पथ-भ्रष्ट घोड़ों की तरह) भटके लोगों को सही मार्ग पर ले आने वाले सारथी, देवताओं और मनुष्यों के शास्ता (आचार्य), बुद्ध, भगवान।" गृहपति! बुद्ध के प्रति उस दृढ़ श्रद्धा को अपने में देखते हुए वेदना को शांत करें।

गृहपति! धर्म के प्रति आपकी श्रद्धा दृढ़ है – "भगवान द्वारा भली प्रकार आख्यात किया गया यह धर्म सांदृष्टिक है, काल्पनिक नहीं, प्रत्यक्ष है, तत्काल फलदायक है, आओ और देखो (कहलाने योग्य है), निर्वाण तक ले जाने योग्य है, प्रत्येक समझदार व्यक्ति के साक्षात करने योग्य है।" गृहपति! धर्म के प्रति उस दृढ़ श्रद्धा को अपने में देखते हुए वेदना को शांत करें।

गृहपति! संघ के प्रति आपकी श्रद्धा दृढ़ है – "सुमार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक संघ, ऋजु मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक संघ, न्याय (सत्य) मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक संघ, उचित मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक संघ, यह जो (मार्ग-फल प्राप्त आर्य) व्यक्तियों के चार जोड़े हैं याने आठ पुरुष-पुद्गल हैं – यही भगवान का श्रावक संघ है, (यही) आवाहन करने योग्य है, पाहुना बनाने (आतिथ्य) योग्य है, दक्षिणा देने योग्य है, अंजलि-बद्ध (प्रणाम) किये जाने योग्य है। लोगों का यही श्रेष्ठतम पुण्य क्षेत्र है। गृहपति! संघ के प्रति उस दृढ़ श्रद्धा को अपने में देखते हुए वेदना को शांत करें।

गृहपति! अज्ञानी लोग दुःशील से युक्त होकर मरने के बाद नरक में उत्पन्न हो दुर्गति को प्राप्त होते हैं। गृहपति! आप श्रेष्ठ और सुंदर शीलों से युक्त हैं। उन श्रेष्ठ और सुंदर शीलों को अपने में देखते हुए, वेदना को देखते हुए वेदना को शांत करें।

गृहपति! आप सम्यक-दृष्टिक हैं, उस सम्यक-दृष्टि को अपने में देखते हुए वेदना को शांत करें। इसी प्रकार, गृहपति! सम्यक-संकल्प, सम्यक-वाचा, सम्यक-कर्मान्त, सम्यक-आजीव, सम्यक-व्यायाम, सम्यक-समाधि, सम्यक-ज्ञान (आर्य-अष्टांगिक) मार्ग का आचरण करने वाले हैं। इन गुणों को अपने में देखते हुए वेदना को शांत करें। गृहपति! अज्ञानी लोग मिथ्या-विमुक्ति से युक्त होते हैं। गृहपति! आपको सम्यक विमुक्ति है। उस सम्यक-विमुक्ति को अपने में देखते हुए वेदना को शांत करें।

तब, अनाथपिण्डिक गृहपति की वेदनाएं शांत हो गयीं।

तदनंतर, अनाथपिण्डिक गृहपति ने आयुष्मान सारिपुत्त और आयुष्मान आनन्द को स्वयं अपने हाथ से भोजन परोसा।

इसके उपरांत आयुष्मान सारिपुत्त, अनाथपिण्डिक गृहपति के भोजन-दान का अनुमोदन कर आसन से उठ कर चले आये।

तब आयुष्मान आनन्द भगवान के पास आये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान आनन्द से भगवान ने कहा– "आनन्द! तुम इस दुपहरिये में कहां से आ रहे हो?"

"भंते! आयुष्मान सारिपुत्त ने अनाथपिण्डिक गृहपति को ऐसे-ऐसे उपदेश दिये हैं।"

"आनन्द! सारिपुत्त पंडित है, महाप्राज्ञ है जो कि सोतापत्ति के चार अंगों को दस प्रकार से विभक्त कर देता है।"

– संयुत्तनिकाय ३.५.१०२२, पठमअनाथपिण्डिकसुत्त

अनाथपिण्डिक की मृत्यु

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के जेतवन में विहार कर रहे थे।

उस समय अनाथपिण्डिक गृहपति बहुत अधिक रुग्ण, दुःखित, बीमार था। अनाथपिण्डिक गृहपति ने एक व्यक्ति से कहा – "हे पुरुष! भगवान के पास जाओ; जाकर मेरे वचन से भगवान के चरणों में सिर से वंदना करो; और यह भी कहो – 'भंते! अनाथपिण्डिक गृहपति बीमार है; वह भगवान के चरणों में सिर से वंदना करता है।' फिर आयुष्मान सारिपुत्त के पास जाओ; जाकर मेरे वचन से आयुष्मान सारिपुत्त के चरणों में सिर से वंदना करो; और यह भी कहो – 'भंते! अनाथपिण्डिक गृहपति बीमार है; वह आयुष्मान सारिपुत्त के चरणों में सिर से वंदना करता है; और यह भी कहो – 'अच्छा हो भंते! आयुष्मान सारिपुत्त अनाथपिण्डिक गृहपति के घर चलें।'

'अच्छा भंते!' उस पुरुष ने अनाथपिण्डिक गृहपति से कह, भगवान के पास जा, भगवान का अभिवादन कर, अनाथपिण्डिक गृहपति का संदेश भगवान को बताया। उसके उपरांत आयुष्मान सारिपुत्त के पास जा, उनका अभिवादन कर, अनाथपिण्डिक गृहपति की बीमारी का समाचार उन्हें सुनाया तथा आयुष्मान सारिपुत्त से अनाथपिण्डिक गृहपति के घर चलने के लिए निवेदन किया।

तब आयुष्मान सारिपुत्त पहनकर, पात्र-चीवर ले आयुष्मान आनन्द को अनुगामी श्रमण बना, अनाथपिण्डिक के घर गये। जाकर बिछे आसन पर बैठ गये। बैठकर आयुष्मान सारिपुत्त ने अनाथपिण्डिक गृहपति से यह कहा – 'गृहपति! ठीक तो हो? दुःखद वेदना हट तो रही है, लौट तो नहीं रही है? व्याधि का हटना तो मालूम हो रहा है; लौटना तो नहीं मालूम हो रहा है?'

'भंते सारिपुत्त! मुझे ठीक नहीं लग रहा है; अत्यधिक जलन हो रही है।'

गृहपति! उपादान आसक्ति का त्याग करें। आँख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा तथा मन – इन छौ इंद्रियों तथा इनके विषयों – रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य और धर्म के प्रति आसक्ति का त्याग करें। पंचोपादान – रूप, विज्ञान, संज्ञा, वेदना तथा संस्कार के प्रति आसक्ति का त्याग करें। पृथ्वी, जल, तेज और वायु की तृष्णा का संग न करें। श्रेष्ठी! लोक-परलोक, श्रुति-स्मृति, प्राप्त-अप्राप्त, जिनमें मन रमता है, उन सब के प्रति अनासक्त हों।

ऐसा कहे जाने पर अनाथपिण्डिक गृहपति रो पड़ा, आँसू गिराने लगा। तब आयुष्मान आनन्द ने अनाथपिण्डिक गृहपति से यह कहा –

"गृहपति! क्या घबरा रहे हो, दिल छोटा कर रहे हो?"

"भंते! मैं घबरा नहीं रहा हूं, दिल छोटा नहीं कर रहा हूं, बल्कि भंते! मैं दीर्घकाल से शास्ता की उपासना और सेवा करता रहा, पर इस प्रकार की देशना से मैं आजीवन वंचित रहा।"

"गृहपति! श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थों को ऐसा सारगर्भित उपदेश समझ में नहीं आता है। ऐसा उपदेश प्रव्रजितों के लिए ही होता है।"

"भंते! गृहस्थों में भी कुछ उपासक ऐसे हैं जो इस प्रकार के उपदेश ग्रहण कर सकते हैं। यदि वे ऐसे उपदेश से वंचित न रहें और उन्हें धर्मसार सुनने को मिले तो बहुतों का मंगल हो, कल्याण हो।"

तब आयुष्मान सारिपुत्त और आयुष्मान आनन्द, अनाथपिण्डिक को उपदेश दे, आसन से उठ कर, चले आये। आयुष्मान सारिपुत्त तथा आयुष्मान आनन्द के चले जाने के थोड़ी ही देर बाद अनाथपिण्डिक गृहपति ने अंतिम सांस ली और वह तुषित देवलोक में उत्पन्न हुआ।

तब प्रकाश युक्त रात्रि में अनाथपिण्डिक देवपुत्र, भगवान के पास गया; जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया। खड़े अनाथपिण्डिक देवपुत्र ने भगवान से यह गाथाओं में कहा -

"ऋषि-संघ से सेवित। धर्मराज बुद्ध का वास रह चुका यह जेतवन मेरे लिए प्रीतिदायक है।

"कर्म, विद्या, धर्म, शील और उत्तम जीवन; इनसे मनुष्य शुद्ध होते हैं, गोत्र और धन से नहीं।

"इसलिए पंडित पुरुष अपने हित को देखते, योनिशः कार्य-कारण का खूब ख्याल करके धर्म का चयन करे, ऐसे वह शुद्ध होता है।

"प्रज्ञा, शील और उपशम में सारिपुत्त-सा पारंगत जो भिक्षु हो, वह भी इतना ही महान होवे।"

अनाथपिण्डिक देवपुत्र ने यह कहा, जिससे शास्ता सहमत हुये। तब अनाथपिण्डिक 'शास्ता सहमत हैं' – यह जान भगवान का अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर वहीं अंतर्धान हो गया।

तब भगवान ने उस देवपुत्र की गाथाओं को भिक्षुओं को बताया।

भगवान की बात सुन, आयुष्मान आनन्द ने भगवान से यह कहा –

"भंते! वह जरूर अनाथपिण्डिक देवपुत्र होगा। भंते! अनाथपिण्डिक गृहपति आयुष्मान सारिपुत्त के प्रति अति श्रद्धावान था।"

"साधु, साधु, आनन्द! जितना कुछ आनन्द तर्क से पाया जा सकता है, वह तूने पा लिया है। आनन्द! वह देवपुत्र अनाथपिण्डिक था।"

भगवान ने यह कहा, संतुष्ट हो आयुष्मान आनन्द ने भगवान के भाषण का अभिनंदन किया।

– मज्झिमनिकाय ३.३८३, अनाथपिण्डिकोवादसुत्त

जेतवन के अवशेष

आज जेतवन खंडहर है। इसकी शिनाख्त की जा चुकी है। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण है **गंधकुटी**। भगवान जिस कुटी में निवास किया करते थे उसे 'मूलगंधकुटी' के नाम से जाना जाता है। भगवान ने जेतवन में १९ वर्षावास किये।

गंधकुटी के पास ही **आनन्दकुटी** भी है। अद्भुत स्मरणशक्ति के धनी आयुष्मान आनन्द भगवान की सेवा में छाया की भांति लगे रहते थे।

आनन्दबोधि वृक्ष भी यहीं है, जिसे आयुष्मान आनन्द ने भगवान के जीवनकाल में ही बोधगया से मूलबोधिवृक्ष का बीज मंगवा कर लगवाया था। भगवान की अनुपस्थिति में इसके पास ध्यान करने हेतु यह लगवाया था। भगवान को ध्यान के लिए किसी मंदिर या मूर्ति की स्थापना स्वीकार्य नहीं थी।

देवदत्त ने भगवान को मरवाने के लिए अनेक प्रयत्न किये, पर सफल नहीं हुआ। बाद में उसे अपनी करनी पर बहुत पश्चात्ताप हुआ। वह भगवान से क्षमायाचना के लिए सावत्थी आया। परंतु वह जेतवन के सामने वंदासागर तालाब में हाथ मुँह धोने के लिए डोली पर से उतरा और वहीं काल कवलित हो गया।

इसी तरह यहीं भगवान पर कामभोग का झूठा आरोप लगाने वाली चिञ्चा माणविका जेतवन विहार से बाहर निकलते ही मृत्यु को प्राप्त हुई।

जेतवन से कुछ दूरी पर 'अङ्गुलिमाल स्तूप' (पक्की कुटी) है। ९९९ मनुष्यों की हत्या कर चुका अङ्गुलिमाल यहीं भगवान की कल्याणी विद्या विपस्सना का अभ्यास कर मुक्त हुआ, अरहंत हुआ। विपस्सना से जीवन ही बदल गया। कोई चमत्कार नहीं था। आज भी जेलों के अनेक जघन्य हत्यारे कैदी इस विद्या का अभ्यास कर बदल रहे हैं। उस अरहंत की स्मृति में अङ्गुलिमाल स्तूप का खंडहर भी अपनी कहानी कह रहा है। पास ही अनाथपिण्डिक स्तूप (कच्ची कुटी) भी है और इसी के पास पुण्यशाला भी।

जेतवन के पूर्व में माता विशाखा ने पुब्बाराम (पूर्वाराम) नामक एक ध्यान-केंद्र की स्थापना कर भगवान सहित भिक्षु-संघ को दान दिया था। आज उस पुब्बाराम का खंडहर धरती में दबा हुआ है। उस पर एक गांव बसा हुआ है।

सावत्थी के जेतवन का खंडहर आज भी ध्यानियों के लिए प्रेरणादायी स्रोत है। आज ढाई हजार वर्षों के पश्चात भी यह स्थान धर्म की पावन तरंगों से आप्लावित है।

सद्धर्म की पुनर्स्थापना

श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक ने जेत राजकुमार के जेतवन उद्यान की भूमि को सोने के सिक्के (कार्षापण) बिछा कर खरीदा था। उसके लिए भगवान की शिक्षा की तुलना में इन कार्षापणों का अधिक महत्त्व नहीं था। जेत राजकुमार ने भी इसके महत्त्व को समझा तथा विहार के प्रवेशद्वार वाला स्थान जो अभी सोने के सिक्के बिछाने से बचा हुआ था, उतनी भूमि उसने अपनी ओर से दान दी। श्रद्धालु अनाथपिण्डिक ने यहां उसके नाम से 'जेतवन विहार' बनवा कर भगवान सहित भिक्षु-संघ को दान किया। पुरातन पालि साहित्य में अनाथपिण्डिक का नाम इस प्रकार सैकड़ों बार आया है –

एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे ..

और यों २,६०० वर्ष पूर्व की यह असाधारण घटना चिरकाल तक लोक-विश्रुत हुई। आज भी सद्धर्म की सेवा में जुड़े हुए साधकों के लिए अपरिमित प्रेरणा का कारण बनी हुई है। महादानी अनाथपिण्डिक का तो परम मंगल, परम कल्याण हुआ ही, उससे प्रेरणा पाकर न जाने अन्य कितनों का मंगल कल्याण हुआ, आज भी हो रहा है और भविष्य में भी होता ही रहेगा। सचमुच समय पक चुका है। सद्धर्म पुनः जागेगा और लोकमंगल होता ही रहेगा, लोककल्याण होता ही रहेगा।

सद्धर्म का लाभ उठाने के लिए सावत्थी में **धम्मसुवत्थी** नाम के विपस्सना-केंद्र की स्थापना की गयी है। यहां पर वर्तमान में अनेक गृहस्थ तथा भिक्षुगण विपस्सना विद्या का लाभ उठा रहे हैं। सुनिश्चित है कि यहां से धर्म की कल्याणकारी गंगा पुनः प्रवाहित होकर विपुल लोक-कल्याण करती रहेगी।

फिर से जागे धरम जगत में, फिर से होय जग कल्याण।
राग, द्वेष और मोह दूर हों, जागे शील-समाधि-ज्ञान॥